मानसप्रबोध

अर्थात्

रामचरित-सम्बन्धी व्याकरण

लेखक

पण्डित विश्वेश्वरदत्त शर्मा

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१७

[मूल्य १)

Printed and published by Apurva Krishna Bose, at the
Indian Press, Allahabad.

भूमिका

—:०:—

श्रीरामो जयति

प्रिय हिन्दी रसिक जनो ! 'मानस-प्रबोध' की भूमिका एक प्रकार से ग्रंथ के आरम्भ में निरूपण हो चुकी है। उसके फिर लिखने की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु आजकल की प्रथा ही कुछ ऐसी होगई है कि ग्रन्थकार ग्रन्थ से अलग ग्रन्थ के विषय में कुछ न कुछ लिखता है। तदनुसार मैं भी यहाँ पर पाठकों से कुछ निवेदन के रूप में लिखता हूँ।

मित्रो ! रामकृपा से और सत्संगति के प्रताप से जब मेरे हृदय में अपनी मातृभाषा हिन्दी का अनुराग उत्पन्न हुआ, तब मैं अपनी ज्ञान-पिपासा मिटाने के लिए साहित्य-सरोवर की खोज करने लगा। जब मेरी दृष्टि साहित्य-सरोवर पर पड़ी, तब क्या देखा कि सरोवर-स्थल सरस अतएव उपयोगी तो है; परन्तु वह फल्गू नदी के समान प्रायः जलहीन है। हां, जहाँ तहाँ उसके गर्भ-क्षेत्र में कतिपय छोटे बड़े कुण्ड सजल हैं। उनमें से 'रामचरित-मानस' नाम का कुण्ड अति ही रमणीय और अमृतजल से परि-

पूर्ण हैं। परन्तु उसका विषय दूसरा है। मेरी पिपासा व्याकरण-विषय की थी। वह उससे दूर नहीं हो सकती थी। तब मैं सरोवर के गर्भक्षेत्र में इधर उधर इस आशा से ढूँढ़ने लगा कि क्या जानिए कहीं कोई कुण्ड ऐसा भी मिले जिससे मेरी पिपासा मिट जाय। परन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि एक भी ऐसा कुण्ड न मिला जिसके निर्मल जल के पान से मेरी पिपासा मिटजाय और मैं तृप्त हो जाऊँ। अवश्य ही कहीं कहीं छोटे छोटे कुछ व्याकरण-गर्त दिखाई पड़े; जिनमें जल बहुत ही स्वल्प है, और कुछ मेंढक अपनी अपनी उछल-कूद और टर्र टर्र कर रहे हैं। भला, उस मलिन और स्वल्प जल से मेरी पिपासा कब शान्त होने की थी? तब मैं निराश होकर सोचने लगा कि अब क्या करना चाहिए। बिना अपने प्रयत्न किये मेरी पिपासा शान्त होने की नहीं। ऐसा विचार कर बुद्धि की कुदाली से खोदने लगा।

प्रथम मैंने नागरी भाषा के विषय में एक कुण्ड खोदा। जब वह खुद गया, तब मन में विचार उत्पन्न हुआ कि यद्यपि नागरी भाषा की ज्ञान-पिपासा इससे बहुत कुछ शान्त हो सकती है, तथापि हिन्दी भाषा तो नागरी भाषा ही नहीं है। सचमुच में नागरी भाषा हिन्दी भाषा का एक छोटा सा भाग है। हिन्दी का बहुत बड़ा भाग प्राकृत अथवा ग्रामीण भाषा है। फिर उसी भाषा में मानस आदि अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। इस कारण उसका भी कुछ ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक है। क्योंकि नागरी भाषा भी उसी प्राकृत भाषा का कालान्तर में परिवर्तित रूपमात्र है। इस लेखे से नागरी भाषा प्राकृत भाषा की सन्तान है। जैसे वैदिक भाषा

की सन्तान संस्कृत भाषा है। 'संस्कृत भाषा वैदिक भाषा की सन्तान है' इस बात का प्रमाण 'संस्कृत' शब्द ही है। 'संस्कृत' का अर्थ होता है संस्कार की हुई अथवा सँवारी हुई भाषा। सो संस्कृत वा संवारी कहने से ही ज्ञात होता है कि यह किसी मूल-भाषा का काटा छाँटा रूप है। वह मूल भाषा वैदिक भाषा ही है। वैसे ही नागरी भाषा को जानना चाहिए। क्योंकि नागरी का अर्थ होता है नगर की भाषा। नागरी वा नगर की भाषा कहने ही से जाना जाता है कि यह हिन्दी भाषा का बहुत छोटा भाग है। क्योंकि हिन्दी का अर्थ होता है कि हिन्द देश की वा हिन्दुओं की भाषा। जैसा कि मैंने हिन्दी व्याकरण प्रवेशिका में बतलाया है। सो हिन्द देश न तो नगरमात्र है और न हिन्दू केवल नगर में ही रहते हैं। इससे सिद्ध होगया कि नागरी भाषा का क्षेत्र बहुत संकुचित है।

फिर यदि विचार-दृष्टि से देखा जाय तो नगर में भी तीन भाग से कहीं अधिक प्राकृत बोली जाती है। यदि हम नागरी भाषा के वास्तविक रूप का विचार करें, तो कहना पड़ेगा कि नागरी भाषा वही है जिसे अधिकांश में शिक्षित ही लोग बोलते हैं। अतएव उसे शिक्षितों की भाषा वा पुस्तक लेख्य भाषा कहना, नागरी भाषा कहने की अपेक्षा अधिक युक्ति-संगत और यथार्थ है। क्योंकि नागरी भाषा का लक्षण उसमें बहुत कम घटता है। नगर में का एक भी परिवार वर्तमान समय में ऐसा न मिलेगा जिसमें विशुद्ध नागरी भाषा बोली जाती हो। प्रत्येक परिवार में अधिक लोग अर्थात् संभवतः चार में से तीन प्राकृत ही बोलते हैं। जो लोग नागरी बोलते हैं, वे भी उसी समय उसका अधिक उपयोग करते हैं,

जब वे कोई ग्रन्थ या लेख लिखते हैं; अथवा सभा-समिति में खड़े होकर कुछ व्याख्यान आदि देते हैं। तात्पर्य यह कि जब वे साव-धान होकर लिखने वा बोलने लगते हैं, तभी विशुद्ध वा परिमार्जित भाषा का उपयोग करते हैं, और अन्य समय में वे भी खिचड़ी बोलते हैं।

परिमार्जित भाषा का स्वरूप कहीं तो विशुद्ध और कहीं तोड़ा मरोड़ा वा ऐंठा हुआ प्राकृत भाषा ही का रूप है। उसे चाहे सँवारा हुआ कहा जाय चाहे बिगाड़ा हुआ बात एक ही है। तथापि हम उसे सँवारा ही रूप मान लेते हैं। क्योंकि जिसे सभ्य समाज स्वीकृत कर लेवे; उसे स्वीकृत न करना अपने को असभ्य कहलाना है। सभ्य असभ्य के विषय में मेरी तो ऐसी धारणा है कि जो जितना ही अधिक नियमों का पालन करता है; वह उतना ही अधिक सभ्य समझा जाता है। मैं समझता हूँ कि मेरी इस धारणा से अधिक लोग सहमत होंगे। परन्तु आजकल हमारे देखने में आता है कि कोई कोई महाशय नियम का पालन उचित रीति से नहीं करते। उदाहरण लीजिए। आजकल अधिक शिक्षित लोग हिन्दी 'राजा' शब्द का कर्ताकारक के बहुवचन में 'राजे' ऐसा रूप लिखने और बोलने लगे हैं। ऐसा लिखना और बोलना मेरी तुच्छ मति में अशुद्ध है। क्योंकि वह नियम-विरुद्ध है। यथा:—

हिन्दी के आकारान्त पुंल्लिंग शब्दों के कर्ताकारक के बहुवचन में दो प्रकार के रूप पाये जाते हैं। कुछ आकारान्त पुंल्लिंग शब्दों का रूप ऐसा होता है; जिसमें 'आ' का 'ए' विकार होता है।

जैसे घोड़े, घड़े, बेटे, पोते आदि में। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं; जिनमें 'आ' का 'ए' नहीं होता। जैसे महात्मा, पुण्यात्मा, धर्मात्मा, दाता, कर्ता, पिता, योद्धा, युवा, सखा, चन्द्रमा आदि में। इन दो श्रेणियों के शब्दों पर यदि ध्यान-पूर्वक विचार किया जाय; तो ज्ञात हो जायगा कि जिनमें 'आ' का 'ए' होता है; वे सब शब्द या तो तद्भव हैं या देशोद्भव। परन्तु जिनमें विकार नहीं होता; वे शब्द कर्ता-कारक के एकवचन में सिद्ध हुए संस्कृत रूप के हैं। इसलिए नियम होता है कि:—

हिन्दी में संस्कृत के सिद्ध रूप आकारान्त पुंल्लिंग शब्दों के 'आ' का कर्ता के बहुवचन में तथा कर्म आदि कारकों के एकवचन में 'ए' नहीं होता।

राजा शब्द, संस्कृत का सिद्ध रूप आकारान्त पुंल्लिंग है। इसलिए उसके 'आ' का 'ए' नियमानुसार हो नहीं सकता। जो कुछ नियम-विरुद्ध है, सो अशुद्ध है। इसलिए 'राजे' ऐसा रूप बोलना वा लिखना युक्ति-संगत न होने से त्याज्य है।

यदि कहा जाय कि हम इसको अपवाद-कोटि में मानेंगे, तो यह भी ठीक नहीं है। क्योंकि अपवाद भी तो नियम ही है, और वह तब हो सकता है, जब साधारण लोग अर्थात् पढ़े अनपढ़े और बालक वृद्ध सभी वैसा व्यवहार करते हों। परन्तु बात ऐसी नहीं है। कुछ अँगुली में गिने जाने योग्य धुरंधर लेखकों को छोड़ साधारण लोग कभी 'राजे' प्रयोग नहीं करते। वे ऐसा ही बोलते हैं कि (दिल्ली दर्बार में बहुत से राजा महाराजा एकट्ठे हुए थे)।

फिर 'राजे' प्रयोग करनेवालों से एक नियम-विरुद्धता और भी होती है, और वह यह है कि वे लोग कर्ता कारक के बहुवचन में तो 'आ' का 'ए' करके अर्थात् 'राजे' ऐसा रूप बोलते वा लिखते हैं ; परन्तु कर्म आदि कारकों के एकवचन में 'आ' का 'ए' करते देखा नहीं जाता। जैसे राजे को, राजे से आदि प्रयोग उनके लेख में शशश्रृंग की नाईं ढूँढ़ने से भी नहीं मिलता।

ऐसे ही कतिपय प्रयोग इन महानुभावों के और भी पाये जाते हैं जैसे 'किई' को 'की' या 'दिई' को 'दी' या 'लिई' को ली आदि लिखना। ऐसे प्रयोग करने में नियम-विरुद्धता तो जो होती है; सो होती ही है, इससे अधिक एक बात और भी होती है कि कभी कभी अर्थ का अनर्थ वा भ्रान्ति भी हो जाने का बड़ा डर रहता है। उदाहरण लीजिए। जैसे कोई कहीं से किसी को लिखे कि (पंडितजी ने पहले संध्या की, पीछे श्राद्ध की विधि बतलाई) इस वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं। एक तो यह कि दोनों की विधि आगे पीछे बतलाई। फिर दूसरा यह कि पहले संध्या की तदनन्तर श्राद्ध की विधि बतलाई। ऐसे ही "देखो करम की बात माताजी पुत्र मरा, फिर "यह तुम्हारी सी टोपी है" "क्या भांग पी ली है"? "क्या राजा की आज्ञा पाली है"? इत्यादि अनेकों वाक्यों के अर्थ भ्रमपूर्ण हो सकते हैं। यदि ऐसी ऐसी त्रुटियाँ चुन कर दिखलाई जायँ, तो एक बड़ा सा पोथा बन जाय। परन्तु मुझे ऐसे व्यर्थ के कलह से प्रयोजन नहीं है। ऐसा लिखने से मेरा प्रयोजन इतना ही है कि नवशिक्षित समाज जिस पर देश

की उन्नति अवनति का भार अवलंबित है वह भाषा- पथ पर बहुत सोच समझ कर अग्रसर होवे । यह उर्दू नहीं है कि लिखा जाय 'बालूकल' पर पढ़ा वा बोला जाय 'बिलकुल' अथवा एक ही बात को चाहे 'लोटा' पढ़िए चाहे लूटा और न अँग्रेज़ी है कि जिसमें 'टुगो' इस दो ही अक्षर के शब्द में एक अक्षर के साथ 'ओ' स्वर 'उ' के स्वरूप में बोला जाता है, और दूसरे के साथ अपने निज रूप में। यह हिन्दी भाषा है। इसकी लिखाई पढ़ाई, प्रायः सभी बातें नियम-पूर्वक हैं। इसमें नियम की ऐसी उपेक्षा वा धींगाधींगी करके निरंकुशता का परिचय देना उचित नहीं है ।

कदाचित् किसी के मन में यह शंका उठे कि 'मानस-प्रबोध' में 'दिई' के स्थान पर 'दी' और 'किई' के स्थान पर 'की' छपा है, सो ग्रन्थकार अपने ही विरुद्ध ऐसा क्यों लिखता है ; तो जानना चाहिए कि ऐसा मेरी इच्छा से नहीं हुआ, किन्तु प्रेसाध्यक्ष की इच्छा से छापा गया है। और प्रेसाध्यक्ष की ऐसी इच्छा इन्हीं कतिपय महानुभावों की रुचि के अनुसार हुई है। इसी से पाठकों से निवेदन कर दिया गया है कि मैं ऐसी ऐसी बातों से सहमत नहीं हूँ ।

हम कहते कहते कुछ थोड़ा अपने विषय से हट गये हैं। अब हम फिर अपने विषय को उठाते हैं कि नागरी वा परिमार्जित भाषा का क्षेत्र बहुत संकुचित है; परन्तु प्राकृत भाषा का विस्तार अत्यन्त अधिक है। सचमुच में प्राकृत भाषा ही सच्ची हिन्दी भाषा है। इसलिए उसका ज्ञान प्राप्त करना अत्यावश्यक ठहरता है । इसी

विचार से मैं एक दूसरा कुण्ड खोदने लगा। यद्यपि इसके खोदने में मुझे बहुत ही अधिक श्रम करना पड़ा है; जिसका अनुभव वे ही उदाराशय महापुरुष विद्वान् लोग कर सकेंगे; जिन्हें कभी ऐसा काम करना पड़ा होगा; तथापि रामकृपा से कुछ काल में वह भी खुद गया। इस प्रकार दीर्घ प्रयत्न करके दीर्घकाल में मैंने दो कुण्ड खोद लिये।

मेरी कुदाली के अत्यन्त कुण्ठित होने के कारण यद्यपि ये कुण्ड लंबे चौड़े और गंभीर नहीं हो सके; तथापि उनमें जल की इतनी न्यूनता भी नहीं है कि पिपासु की पिपासा अधिकांश में न बुझ सके। जब दोनों कुण्ड खुद चुके तब मैंने उनके अलग अलग नाम रक्खे। नागरी भाषा वाले का नाम 'भाषा-तत्त्वप्रकाश' रक्खा, और दूसरे का 'मानस-प्रबोध'। 'मानस-प्रबोध' नाम रखने का कारण यह हुआ कि उसमें जो जल का सोता फूटा; सो ऊपर बतलाये हुए 'रामचरितमानस' की ओर से आया है। यह मेरे लिए अहो-भाग्य की बात है कि मेरे इस कुण्ड में परम पावन आसपियास मनोमलहारी मानस-वारि का झरना झर रहा है।

राम राम करके जैसे तैसे कुण्ड तो खुद गये, और उनका नाम-करण भी होगया; परन्तु हिन्दुओं की यह रीति है कि जब तक जलाशय की प्रतिष्ठा या उत्सर्ग न हो लेवें; तब तक लोग उसमें का जल प्रायः नहीं पिया करते। प्रतिष्ठा के करने में द्रव्य का व्यय होता है। मेरे पास इतना द्रव्य कहाँ? इस कारण से प्रतिष्ठा के निमित्त कुछ काल तक ठहरना पड़ा। जैसे तैसे कुछ प्रबंध कर करा के एक कुण्ड की अर्थात् 'भाषा-तत्त्वाप्रकाश' की प्रतिष्ठा, भली

बुरी जैसी मुझसे बन पड़ी निज धन लगा के कर दी; परन्तु दूसरे के लिए कहीं ठिकाना न था। यदि मेरे पास इतना धन होता कि उस भार को भी उठा लेता; तब तो कोई बात ही न थी; परन्तु मेरे धन का संकोच रहता है। इसलिए आवश्यक हुआ कि हिन्दी प्रेमियों से सहायता माँगूँ।

मुझे पूर्ण आशा थी आज कल जब इतनी ग्रंथ-प्रसारक मंडली आदि सभा-समितियाँ पाई जाती हैं, और इतने हिन्दी-हितचिन्तक लोग हैं; तब अवश्य ही मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायगा; परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि ऐसा नहीं हुआ। मैंने आठ स्थानों को ग्रंथ के नमूने के साथ निवेदन-पत्र भेजा, और ऐसे ऐसे लोगों के पास भेजा, जो हिन्दी-हितैषी होने का बाना बाँधे हैं; परन्तु किसी ने लिखा कि "ग्रंथ तो अच्छा और उपयोगी है; परन्तु हमारे यहाँ से इसका प्रचार न होगा"। किसी ने लिखा कि "सभा के पास धन नहीं है" इत्यादि। सारांश यह कि कोई भी इस कार्य के लिए उद्यत न हुआ। तब मैं निराश होकर सोचने लगा कि मेरा मनोरथ सिद्ध न होगा। यह काम मेरे जीवन में होता हुआ नहीं जान पड़ता। सो मैंने उसकी चिन्ता ही छोड़ दी, और दूसरा ग्रंथ लिखने लगा; जिसका नाम मैंने 'विचारचन्द्रिका' रक्खा है। ईश्वर की कृपा से कुछ काल में वह भी लिख गया।

एक दिन रेवरेंड जी० डबल्यू ब्राउन (पी. एच. डी.) साहब जो अपने किसी कार्यवश प्रयाग गये थे; लौट कर मुझसे यह शुभ वचन बोले कि "पंडितजी 'मानस-प्रबोध' का

नमूना आप मुझे दीजिए। मैं 'इंडियन प्रेस, प्रयाग' के मालिक के पास भेजूँगा। क्योंकि मेरी उनकी इस विषय में कुछ बात-चीत हुई है।" तब मैंने नमूना लिखा कर उनको दे दिया। उन्होंने भेज दिया। कुछ लिखा पढ़ा हो चुकने पर अटकल बीसेक दिन में मुझे निश्चित रूप से विदित हो गया कि 'इंडियन प्रेस, प्रयाग' के स्वामी इस भार को उठा लेंगे। निश्चय होते ही मैंने आप के पास ग्रंथ भेज दिया। ईश्वर की कृपा से और सच्चे हिन्दी-हितैषी इंडियन प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणिजी घोष की उदारता से 'मानस-प्रबोध' नाम कुण्ड की भी प्रतिष्ठा हो गई।

मित्रो! यह कहते मेरी वाणी सकुचती है कि हे हिन्दी-रसिक जनो! आप लोग इसके तट पर आइए, और इसके जल से अपनी तृषा बुझाइए। सकुचने का कारण यह है कि यह कुण्ड आप लोगों की उच्चाभिलाषा के योग्य नहीं है। इसमें आप लोगों के संतुष्ट करने का कोई गुण नहीं है। यदि कुछ है; तो वह यही है कि यह आप लोगों की निज संपत्ति है। इसके लिए आप को किसी विदेशी का कनौड़ा होना नहीं पड़ेगा। अर्थात् ऐसा कहना नहीं पड़ेगा कि यह वस्तु हमें आप के प्रसाद से मिली है। यह एक ब्राह्मण के परिश्रम का फल है। ब्राह्मण सदा आप लोगों का कल्याण चाहते आये हैं; और आप लोग भी सदा से उनका मान संमान करते आये हैं। ब्राह्मण जाति के साथ हिन्दूमात्र का अङ्गाङ्गि-भाव-संबंध है। यदि हमारा कोई अंग कुछ काम करता है, तो हम उसका धन्यवाद वा कृतज्ञता प्रकट करने नहीं लगते, क्योंकि अंग तो

इसीलिए सृजे गये हैं कि अंगी का कार्य करें। तात्प ` यह कि अन्य किसी के उपकार कर देने पर हमको मधुरता के व्यवहार की आवश्यकता होती है, परन्तु अपने आप के साथ उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। देखिए, गाय-भैंस के दूध में मिस्री सभी मिलाते हैं, परन्तु माता के दूध में कोई मिस्री नहीं मिलाता। क्योंकि वह उसी के लिए उत्पन्न होता है।

जैसे माता को अपना बालक कुरूप होने पर भी सबसे अधिक प्यारा लगता है, क्योंकि उस पर उसकी ममता होती है; वैसे ही यदि इस अयोग्य ग्रंथ-कुण्ड पर अपना होने के कारण आप लोगों की ममता उत्पन्न हो जावे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उक्त रीति से यदि आप लोग इसे अपना के इसके जल का बर्ताव करने लगें; तो मुझे वैसा ही आनन्द होगा; जैसा किसी रंक को तब होता है; जब उसके खोदे हुए कूप से जल लेकर राजा-महाराजा और श्रीमन्त लोग बर्ताव करते हैं। परन्तु यदि ऐसा न भी हो; तो भी मैं अपने को कृतार्थ मानूँ होगा। क्योंकि इसके द्वारा औरों की न सही; पर मेरी तृषा तो अवश्य ही शान्त हो गई है।

अन्त में मैं तीन महाशयों को हृदय से धन्यवाद देकर इस विनीत निवेदन को समाप्त करता हूँ।

प्रथम श्रीमान् जी० डबल्यू० ब्राउन (पी० एच्० डी०) महाशय को धन्यवाद देता हूँ। क्योंकि इस ग्रंथ का प्रकाशित होना उन्हीं की विशेष चिन्ता का फल है। दूसरे श्रीमान् इंडियन प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष महोदय को अनेक धन्यवाद देता हूँ; जिन्होंने अपना [illegible]

ऋौर सच्ची हिन्दी-हितैषिता का परिचय दिया है। तीसरे महाशय मेरे मित्र बालमुकुन्द त्रिपाठी हैं, जिन्होंने पहले इसका नमूना लिखा जो उक्त बाबू साहब के पास भेजा गया था, ऋौर जब छपने के समय प्रूफ़ ऋाते थे तब समय न रहते भी कुछ समय निकाल कर प्रूफ़ पढ़ने में मुझे सहायता दी है। इन तीनों हिन्दी-हितैषियों का परमेश्वर भला करे।

विनयावनत

विश्वेश्वरदत्त शर्मा।

॥ श्रीमङ्गलमूर्तये नमः ॥

मानस-प्रबोध

इष्टदेव श्रीरघुनाथजी का स्मरण करके तथा भक्तशिरोमणि कविकुल-चूड़ामणि जगद्-गुरु श्रीगोस्वामी तुलसीदास जी के चरण-कमल का ध्यान करके उनके रचे हुए श्रीरामचरितमानस में विद्यार्थियों की गति होने के लिए "मानसप्रबोध" नाम का व्याकरण रचता हूँ।

मैंने हिन्दीव्याकरणप्रवेशिका रच कर बालकों को व्याकरण सरीखे कठिन विषय में प्रवेश कराने का प्रयत्न किया; फिर 'भाषा-तत्त्वप्रकाश' रचकर उन्हें भाषा के गूढ़ विषयों को भली भाँति समझा दिया। परन्तु भाषातत्त्व-प्रकाश में केवल लोकभाषा का विषय ही समझाया गया है। हिन्दी-भाषा के दो भेद पाये जाते हैं, एक तो गद्य दूसरा पद्य। गद्य उसे कहते हैं जिसको प्रत्येक जन नित्य प्रति व्यवहार में लाता है। इसी को हम 'लोकभाषा' भी कहते हैं। क्योंकि 'लोक' का अर्थ 'लोग' है और भाषा का अर्थ 'बोली' है—सो 'लोकभाषा' का अर्थ होता है 'साधारण लोगों की बोली'। इसी का विषय भाषातत्वप्रकाश में समझाया गया है। शेष रह गई पद्य-भाषा। 'पद्य-भाषा' वह कहाती है जो छन्द के रूप में होती है। छन्द गीत को कहते हैं। गीत वा छन्द के भेद नाना प्रकार के हैं। उनके नाम लक्षण आदि जानने के लिए एक

अलग ही शास्त्र निर्माण किया गया है। हम मानसप्रबोध में उन बातों को बताना नहीं चाहते। हम इसमें विद्यार्थियों को केवल वे बातें बताना चाहते हैं जो, अर्थ में तो नहीं, पर रूप में लोकभाषा से भेद रखती हैं। ऐसे भेद का कारण कभी तो कवि की स्वतन्त्रता होती है और कभी मात्रा वा वर्णों की संख्या की पूर्ति। कहने का तात्पर्य यह है कि पद्य रूप भाषा यद्यपि अधिकांश में गद्य रूप भाषा से मिलती जुलती रहती है तो भी उसमें कुछ न कुछ भेद भी रहता है।

यह भेद केवल हिन्दी भाषा में ही नहीं होता बरन उसकी जननी संस्कृत में भी पाया जाता है। उदाहरण के लिए कुछ प्रयोग हम दिखलाते हैं। वेद में एक ठौर लिखा है कि—

"स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम"

इस ऋचा में 'दाधार' पद को देखिए। यह साधारण लोकभाषा के समान नहीं है। साधारण लोकभाषा में 'दधार' ऐसा प्रयोग होता था, परन्तु वही छन्द में 'दाधार' पढ़ा गया है। फिर और भी देखिये—

"भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः"

इसमें 'कर्णेभिः' पर हमारा लक्ष्य है। साधारण लोकभाषा में 'कर्णैः' ऐसा व्यवहार होता था। वही छन्द में 'कर्णेभिः' कहा गया है। इस प्रकार के प्रयोगों से वेद भरे पड़े हैं। इसी हेतु संस्कृत व्याकरण के रचयिता भगवान् पाणिनिजी ने अपने व्याकरण अष्टाध्यायी में एक सूत्र ही रच दिया। वह सूत्र है "बहुलं छन्दसि"। यह सूत्र अध्याय सात, पाद एक और संख्या दस का है। इसका

अर्थ है कि छन्द में बहुत भेद होते हैं। फिर न केवल एक यही सूत्र है बरन अष्टाध्यायी के अनेक सूत्रों में "छन्दसि" "छन्दसि" कहा गया है जिसका अर्थ यही होता है कि छन्द में ऐसा होता है, लोकभाषा में नहीं। इस से यह सारांश निकला कि साधारण भाषा में जो शब्द या पद व्यवहार किये जाते हैं उन्हीं के छन्द में अनेक रूप हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार पदों का रूप विकृत करके पद्य में उनका प्रयोग करता है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कवि को इतनी स्वतन्त्रता मिली है कि वह आवश्यकता के बिना शब्द को तोड़मरोड़ के प्रयोग करे। शब्द का रूप विकृत करने में कवि को वहीं तक स्वतन्त्रता है जहाँ तक कि अर्थ का अनर्थ न हो जाय, अथवा पद भ्रमात्मक न बन जाय। जैसे 'अंग' शब्द को हम 'आग' वा 'आगा' अथवा 'अग' नहीं कर सकते, क्योंकि ऐसा करने से अनर्थ वा भ्रान्ति होने का बड़ा डर है।

हिन्दी भाषा के अनेक कवि हुए हैं जिन्हों ने अपनी ओजस्विनी कविता के द्वारा संसार वा समाज का बड़ा उपकार किया है। उनमें से गोस्वामी तुलसीदास और सूरदास जी का आसन बहुत ऊँचा है। उनमें भी गोस्वामी तुलसीदास जी "रामचरितमानस" के कारण अग्रगण्य माने जाते हैं।

सच मुच रामचरितमानस एक अनुपम ग्रन्थ है। उसके विषय में यदि ऐसा कहा जाय कि संसार के समस्त काव्यों में वह प्रधान है, तो कुछ भी अत्युक्ति न होगी, क्योंकि उसको हम सर्वांश में

परिपूर्ण पाते हैं। तात्पर्य यह है कि काव्य करने का जो उद्देश होता है वह मानस में अच्छी रीति से निवाहा गया है। यही कारण है कि भारतवर्ष में तो उसका राज्य है ही; पर अपने अलौकिक गुणों के कारण द्वीपान्तरों में भी वह आदर की दृष्टि से देखा जाता है। उसी सर्वमान्य रामचरितमानस के अर्थ को विद्यार्थी सुगमता से जान लें इस निमित्त हम 'मानसप्रबोध' नाम का व्याकरण रचते हैं।

यद्यपि हमने इसका नाम 'मानसप्रबोध' रक्खा है, तो भी जानना चाहिए कि इसके ये नाम भी हो सकते हैं (१) तद्भवप्रकाश, (२) प्राकृत हिन्दीचन्द्रिका, और (३) छन्दोव्याकरण क्योंकि इन नामों के गुण विद्यार्थी को इसमें मिलेंगे।

हमने इसमें रामचरितमानस के उदाहरण दे दे कर नियम रचे हैं, इसलिए इसका नाम 'मानसप्रबोध' रक्खा है।

यद्यपि मानस की प्रति अनेक स्थानों में छपी हैं और उनमें कहीं कहीं पाठ-भेद भी देखा जाता है, परन्तु हमने जो उदाहरण लिये हैं सो संवत् १९६८ की, श्रीवेंकटेश्वर प्रेस की छपी हुई, गुटका-रूप प्रति में से लिये हैं। कहीं कहीं इंडियन प्रेस, प्रयाग की प्रति से भी लिये हैं, परन्तु बहुत थोड़े।

यह बात हमने ऊपर बताई है कि मानस, वा किसी भी छन्दोग्रन्थ में, जो लोक भाषा से भेद दीखता है सो केवल रूप के विषय में होता है, अर्थ के विषय में नहीं; अर्थात् छन्द में कहे हुए रूप कभी कभी विकृत होते हैं। ऐसा विकार हम दो बातों में

पाते हैं एक तो वर्णों के विषय में और दूसरा पदों के विषय में। इन्हीं दोनों प्रकार के विकारों को हम मानसप्रबोध में दिखायेंगे। प्रथम हम वर्णविचार करेंगे, पीछे पदविचार।

वर्णविचार में

पहले—स्वरविचारः—

२ ३ १ ५ ४
(चौ०) विधिहिं बन्दि तिन्ह कीन्ह अरंभा

(अर्थ) १ उन्होंने २ विधि को ३ नमस्कार करके ४ आरंभ ५ किया।

२ ३ ४ ६ १ ५
(दो०) यहि सुखते सतकोटि-गुन पावहिं मातु अनन्द

(अर्थ) १ माताएँ २ इस ३ सुखसे ४ सौ करोड़ गुना ५ आनन्द ६ पाती हैं।

१ २ ५ ३ ४
(चौ०) अज्ञा सम न सुसाहिब सेवा

(अर्थ) १ आज्ञा मानने के २ समान ३ स्वामी की ४ सेवा (दूसरी) ५ नहीं है।

अवतरण—ऊपर के तीनों प्रमाणों में जिस जिस पद के नीचे रेखा खींची हैं वे हमारे लक्ष्य हैं। लक्ष्य उदाहरण को कहते हैं। रेखाङ्कित शब्द हिन्दी में तद्भव हैं। तद्भव कहने से हमारा यह अभिप्राय है कि संस्कृत भाषा के बहुत से शब्द हिन्दी भाषा में बोले जाते हैं। उनमें से कुछ तो संस्कृत के समान ही बोले जाते हैं और कुछ शुद्ध रूप से बिगड़े हुए बोले जाते हैं। जो शुद्ध बोले

जाते हैं उन्हें पंडित लोग तत्सम कहते हैं, जैसे देश, रत्न, बुद्धि, मति, लज्जा, आदि । परन्तु जो, कुछ बिगड़े हुए बोले जाते हैं वे तद्भव कहलाते हैं । तद्भव शब्द का अर्थ है कि "उससे जो हुआ"— जैसे ऊपर के रेखाङ्कित शब्द । यह बात हम कह चुके हैं कि मानस-प्रबोध में विशेष करके उन्हीं बातों की चर्चा की जायगी जो विकार होने से संबंध रखती हैं ।

हम देखते हैं, कि ऊपर दिये हुए प्रमाणों में रेखाङ्कित शब्द क्रम से ये हैं:—(१) अरंभा, (२) अनन्द, (३) अज्ञा ।

हमने ऊपर बतलाया है कि ये शब्द तद्भव हैं, अर्थात् संस्कृत के शब्दों से बिगड़ कर बने हैं । इनके शुद्ध रूप नीचे दिये जाते हैं ।

संस्कृत..............तद्भव

(१) आरंभ...........अरंभ वा अरंभा

(२) आनन्द...........अनन्द

(३) आज्ञा..............अज्ञा

इन शब्दों पर विचार करने से स्पष्ट जान पड़ता है कि इनके आदि का (आ) अक्षर ह्रस्व करके पढ़ा गया है । इससे हम यह नियम निकालते हैं कि—

(१) जिन शब्दों का आदि स्वर (आ) होवे, प्राकृत हिन्दी में उसे प्रायः ह्रस्व कर देते हैं । और कभी कभी मध्य का भी ह्रस्व होता है । जैसे—

संस्कृत		तद्भव	संस्कृत		तद्भव
आश्चर्य	...	अचरज	आचार	...	अचार
आकाश	...	अकास	राजधानी	...	रजधानी
आषाढ़	...	असाढ़	माहात्म्य	...	महातम
आग्रहायण	...	अगहन	नान्दीमुख	...	नन्दीमुख
आखेट	...	अहेर	आदहन	...	अदहन
आर्द्रक	...	अदरक	आकर्ण्य		अकनि (सुन कर)
			मृगांक	...	मयंक

विवरण—विद्यार्थियों को जानना चाहिए कि यह नियम न केवल संस्कृत शब्दोंही पर लागू होता है वरन देशोद्भव शब्दों पर भी ऐसा विकार होता है। इसी से हम ऐसे नियमों को 'प्राकृत-नियम' कहते हैं। प्राकृत नियम वे ही हैं जो प्रकृति अर्थात् स्वभाव से संबंध रखते हैं। तात्पर्य यह कि ऐसी बातों को लोग सोच समझ कर नहीं करते, किन्तु ये बातें बरबस उनके मुँह से, प्रकृति के झुकाव के कारण, निकलती हैं। चाहे शब्द संस्कृत का हो वा देशोद्भव हो, अथवा और ही किसी भाषा का हो, बोलनेवालों के मन में इस विषय का कुछ विचार नहीं रहता। वे तो प्रकृति के वश होकर 'आ' को ह्रस्व कर ही देते हैं यथा 'आसमान' को 'असमान' कहते हैं; यद्यपि यह शब्द संस्कृत का नहीं है उर्दू का है, तथापि विकार यहाँ भी होता है। ऐसे ही 'झाड़बेरी' से 'झड़बेरी,' 'गालकटा' से 'गलकटा' 'गाँठकटा,' से 'गँठकटा' आदि और भी समझने चाहिए।

फिर यह नियम तद्भव में भी लगता है; अर्थात् इस नियम के कारण तद्भव के भी तद्भव शब्द बन जाते हैं। जैसे हमने ऊपर एक उदाहरण (गँठकटा) दिया है। इसे तद्भव का तद्भव जानना चाहिए, क्योंकि संस्कृत 'ग्रन्थि' का तद्भव 'गाँठ' है। यह कैसे बना इस बात की चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ हम यह दिखाना चाहते हैं कि 'गाँठ' तद्भव से जब 'गँठकटा' बनाना चाहा तब 'गाँठ' का 'आ' ह्रस्व हो गया। ऐसे ही 'हस्त (संस्कृत) से 'हाथ' हुआ फिर इससे 'हथकड़ी' शब्द बना। ऐसे ही 'पवकड़ी' आदि को भी जानो। पूर्वोक्त उदाहरणों पर ध्यान देने से यह बात सहज ही जानी जाती है कि जब कभी ऐसे दो शब्दों के मेल से एक शब्द बनता है जिनमें से पहला शब्द ऐसा हो कि उसका आदि स्वर 'आ' होवे, तब बहुधा उसका ह्रस्व हो जाता है; जैसे 'राजपुत्र' से 'रजपूत' आदि में। बहुधा इसलिए कहा कि 'राजगद्दी' में ऐसा नहीं होता।

यह बात न भूलनी चाहिए कि नियम में 'प्रायः' कहा गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसे शब्द हिन्दी में दो रीति से बोले जाते हैं। कभी तत्सम, कभी तद्भव। बहुधा अशिक्षित लोग तद्भव को बोलते हैं। परन्तु शिक्षित लोग दोनों प्रकार के बोलते हैं। अशिक्षितों की भाषा को ग्राम्य वा गँवारी भाषा कहते हैं। उसी को हम ने इस ग्रन्थ में 'प्राकृत हिन्दी' लिखा है। क्योंकि वह प्रकृति से उत्पन्न होती है। भाषा-परिवर्तन के विषय में मेरा अनुमान है कि यह परिवर्तन पहले पहल अशिक्षितों से आरंभ होता है; फिर काला-

न्तर में, अर्थात् सौ दो सौ वा इससे भी अल्पाधिक काल में, वही परिवर्तित भाषा पंडितों की भाषा बन जाती है। इसी नियम के अनुसार हमारी आज कल की भाषा वैदिक भाषा का मुद्दतों में बदला हुआ रूप है।

सूचना—जहाँ कहीं हम 'प्राकृत हिन्दी में' ऐसा कहें वहाँ विद्यार्थियों को जानना चाहिए कि यह नियम देशोद्भव और तद्भव शब्दों में भी लगेगा। हम प्राकृत हिन्दी में तीन प्रकार के शब्दों को मानते हैं—(१) तत्सम (२) तद्भव और (३) देशोद्भव। 'देशोद्भव' शब्द वे हैं जो मूल-निवासियों के शब्द आर्य-भाषा में मिल गये हैं; अथवा जो अन्य देशियों की भाषा से सहवास के कारण ले लिये गये हैं। जैसे कुरता, टोपी, झाड़, गाछ, खिड़की, आदि।

(चौ०) तुम्ह[१] सारिखे[२] सन्त[४] प्रिय[३] मोरे

(अर्थ) १ तुम सरीखे २ सन्त लोग ३ मेरे ४ प्यारे हैं।

(चौ०) सुनहु[२] लखन[१] भल[४] भरत[३] सरीशा

(अर्थ) १ हे लक्ष्मण २ सुनो ३ भरत के समान ४ भला—

(चौ०) धूम[१] कुसंगति[२] कारिख[३] होई[४]

(अर्थ) १ धूआँ २ कुसंगति से ३ कारिख ४ होता है।

अवतरण—ऊपर की चौपाइयों में (१) सारिखे, (१) सरीशा और (३) कारिख ये शब्द हमारे लक्ष्य हैं। इनके शुद्ध रूप ये हैं।

संस्कृत	तद्भव
सदृक्ष...............	सारिखा वा सरीखा
सदृश...............	सरिस वा सरीशा (सा)
कलुष...............	कारिख वा करिखा

इनमें हम देखते हैं कि शब्द का आदि स्वर अर्थात् ह्रस्व 'अ' दो पदों में दीर्घ कर दिया गया है, और एक स्थान में दीर्घ नहीं किया गया। इससे यह नियम निकला कि

(२) शब्द का आदि स्वर यदि ह्रस्व (अ) होवे तो वह प्राकृत हिन्दी में कभी कभी दीर्घ हो जाता है। यथा

संस्कृत	तद्भव
परीक्षा	परिख वा पारिख
नहिं	नहीं वा नाहीं
अधीन	अधीन वा आधीन इत्यादि

विवरण—इस प्रकार के उदाहरण अधिक नहीं मिलते, इसलिए दूसरे नियम को साधारण न जानना चाहिए। ऐसे प्रयोग छान्दिक हुआ करते हैं।

(चौ०) सौरज[४] धीरज[५] तेहि[१] रथ[२] चाका[३]

(अर्थ) १ उस २ रथ के ३ चक्र (पहिये) ४ शूरता (और) ५ धीरज हैं।

(चौ०) खोजत[३] आक[२] फिरहिं[४] पयलागी[१]

(अर्थ) १ दूध के लिए २ मदार ३ ढूँढ़ते ४ फिरते हैं।

२ ३ ४ १

(दो०) उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति

(अर्थ) १ खलों की रीति है (कि) २ उदासीन लोगों का, शत्रुओं का और मित्रों का हित ३ सुनते ही ४ जल जाते हैं ।

१ ४ २ ३

(चौ०) पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के

(अर्थ) १ हे पुत्र २ तुम ३ सबही के ४ परम प्यारे हो ।

२ १ ४ ३

(चौ०) ऊँच निवास नीच करतूती

(अर्थ) १ निवास (तो) २ ऊँचा है (पर) ३ करतूती (करतूत, काम) ४ नीच हैं ।

३ ४ १ २ ५

(चौ०) एकहि आँक मोर हित येहू

(अर्थ) १ मेरा २ भला ३ एक ४ आँक (निश्चय करके) यही है ।

अवतरण—ऊपर दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य ये हैं । (१) चाका, (२) आक, (३) मीत, (४) पूत, (५) ऊँच, (६) आँक । इनके शुद्ध रूप क्रम से ये हैं:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
(१) चक्र ...	चाक	(३) मित्र ...	मीत	(५) उच्च......	ऊँच
(२) अर्क ...	आक	(४) पुत्र ...	पूत	(६) अङ्क......	आँक

इन लक्ष्यों में प्रथम तो हम यह बात देखते हैं कि प्रत्येक संस्कृत शब्द के अन्त का वर्ण संयुक्त है। फिर उससे पूर्व जो स्वर है सो

ह्रस्व है। परन्तु तद्भव शब्द में ह्रस्व स्वर दीर्घ हो गया है और संयुक्ताक्षर में से एक व्यंजन रह गया है, अर्थात् शेष का लोप हुआ है। इससे यह नियम निकलता है कि:—

(३) यदि किसी ह्रस्व स्वर से परे संयुक्ताक्षर हो तो प्राकृत हिन्दी में प्रायः पूर्व स्वर का दीर्घ हो जाता है और संयुक्ताक्षर में से एक रह जाता है, परन्तु पूर्व स्वर कभी कभी सानुनासिक होता है। यथा:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
(१) उष्ट्र	... ऊँट	(९) पुच्छ	... पूँछ	(१७) अग्नि	... आग
(२) लक्ष	... लाख	(१०) पंक्ति	... पाँत	(१८) सिक्थ	... सीथ
(३) भिक्षा	... भीख	(११) दन्त	... दाँत	(१९) कर्ण	... कान
(४) अक्षि	... आँख	(१२) पत्र	... पात	(२०) मुष्टि	... मूठ
(५) सप्त	... सात	(१३) रिक्त	... रीता	(२१) रुष्ट	... रूठ
(६) अष्ट	... आठ	(१४) तिक्त	... तीता	(२२) शुक्ति	... सूती
(७) वक्र	... बाँक	(१५) चर्म	... चाम	(२३) लज्जा	... लाज
(८) शुक्र	... सूक	(१६) कर्म	... काम	(२४) सत्य	... सांच

इत्यादि और भी बहुत हैं।

विवरण—ऊपर नियम में हमने 'प्रायः' कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि किसी किसी शब्द में ऐसा विकार नहीं होता। जैसे 'धर्म' से 'धाम' नहीं होता। ऐसे ही—मग्न, दुष्ट, शक्र, तक्र, आदि कुछ शब्द यद्यपि संस्कृत के हैं परन्तु इनमें विकार नहीं होता। यह न समझना चाहिए कि जो लक्ष्य मानस के दिये गये हैं और

जो नियम के उदाहरण दिये गये हैं सो सब दो दो अक्षर के हैं इसलिए विकार दोही अक्षर के शब्दों में होता है। ऐसी समझ भूल ठहरेगी क्योंकि 'अञ्चल' से 'आँचर', 'अञ्जन' से 'आँजन' 'मुण्डन' से 'मूँड़न' आदि अनेक प्रयोग हैं जो तीन अक्षरों के शब्द हैं और जिनमें विकार होता है।

४ ५ ३ २ १ ७ ६ ९ ८

(छं०) दुख सुख लिखा जो <u>लिलार</u> हमरे जाब जहँ पाउब तहीं

(अर्थ) १ हमारे २ माथे में ३ जो कुछ ४ दुःख सुख ५ लिखा है ६ जहाँ ७ जावेंगी ८ वहीं पावेंगी।

१ ४ २ ३

(दो०) कहहिं गवाइय <u>छिनुक</u> श्रम

(अर्थ) १ कहते हैं २ एक क्षण ३ परिश्रम को ४ खोइए (दूर कीजिए)–

अवतरण—ऊपर दिये हुए प्रमाणों में (१) लिलार और (२) छिनकु हमारे लक्ष्य हैं। इनमें हम देखते हैं कि 'अ' स्वर का 'इ' हो गया है, क्योंकि इन शब्दों के संस्कृत रूप क्रम से ये हैं— (१) ललाट, (२) क्षण। सो नियम हुआ कि—

(४) ललाट आदि कुछेक शब्दों के आदि स्वर 'अ' को प्राकृत हिन्दी में 'इ' करके बोलते हैं। यथाः—

संस्कृत		तद्भव
क्षमा	...	छिमा
चटक	...	चिड़ी वा चिड़िया
कपाट	...	किवाड़
गणना	......	गिनना
कल्लोल	......	किलोल
कण	...	किनकी (चाँवल आदि की)

विवरण—इस प्रकार के प्रयोग अधिक नहीं पाये जाते। जो ऊपर दिये गये हैं उनसे अधिक तो अवश्य होंगे परन्तु भाषा पर दृष्टि डालने से वे थोड़े ही ठहरेंगे। इससे यह साधारण नियम नहीं कहा जा सकता।

१ २ ४ ३
(चौ०) उढुकि परहिं फिर हेरहिं पीछे

(अर्थ) १ अडुक पड़ते हैं २ फिर कर ३ पीछे की ओर ४ देखते हैं।

अवतरण—इस चौपाई में 'पीछे' पद आया है। इसका शुद्ध संस्कृत रूप 'पश्चात्' है। इसमें हम देखते हैं कि 'प' अक्षर में जो ह्रस्व 'अ' है उसकी जगह 'ई' हो गई है। इसलिए, साधारण नियम तो नहीं, परन्तु विशेष नियम यह होगा कि—

(५) पश्चात् शब्द के ह्रस्व 'अ' को प्राकृत हिन्दी में दीर्घ 'ई' हो जाती है।

'पीछे' शब्द शिक्षित तथा अशिक्षितों में बहुत प्रचलित है जैसे—आ बेटी मेरे पीछे पीछे चली आ—इत्यादि।

५ १ २ ४ ३
(चौ०) परा जाइ तेहि सेज अनूपा

(अर्थ) १ जाकर २ उसकी ३ सुन्दर ४ सेज पर ५ पड़ गया।

१ २ ३ ४
(चौ०) सफल रसाल पूँगफल केरा

(अर्थ) १ फलसहित २ आम ३ सुपारी (और) ४ केला—

अवतरण—ऊपर दी हुई चौपाइयों में हमारे लक्ष्य (१) सेज

और (२) केरा शब्द हैं। इनके संस्कृत रूप क्रम से (१) शय्या और (२) कदली हैं। हम यहाँ देखते हैं कि इन शब्दों का आदि स्वर 'अ' अपने से अगले वर्ण सहित 'ए' हो गया है। जैसे, श् + अ + य् + य् + आ = 'शय्या' सो 'श्' के आगे जो 'अ' है सो अपने से आगे जो 'य्' है उस समेत 'ए' बन गया, फिर दूसरा 'य' 'ज' करके बोला गया तब 'सेज' यह रूप सिद्ध हुआ। ऐसे ही 'कदली' शब्द से 'केरा' वा 'केला' अथवा 'केली' बने हैं। सो नियम हुआ कि—

(६) शय्या आदि कुछेक संस्कृत शब्दों का आदिस्वर 'अ' बहुधा अपने से आगे के वर्ण समेत और कभी कभी अकेला ही प्राकृत हिन्दी में 'ए' हो जाता है।

यथा—संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
बदरी	... बेर (फल)	कञ्चुक	... केंचुल वा केंचुली
मण्डूक	... मेंडक वा मेंढक	कपाट	... केवाड़ (किवाड़)
नकुल	...... नेउला	कर्कट	... केकड़ा
सन्धि	...... सेंध (भीत का छेद)	कति	... केता वा केतना (कितना)

इत्यादि और भी जानना।

विवरण—हम ऊपर दिये हुए उदाहरणों में एक बात और भी देखते हैं कि जहाँ जहाँ सानुनासिक पंचम वर्ण के सहित 'अ' है वहाँ वहाँ 'ए' सानुनासिक हुआ है। जैसे, 'मण्डूक' से 'मेंडक' में।

फिर यह जानना चाहिए कि इस प्रकार के उदाहरण भाषा में बहुतायत से नहीं मिलते। सो यह नियम साधारण नहीं है।

(चौ०) पुर[1] पैठत[2] रावन[3] कर बेटा[4]

(अर्थ) १ नगर में २ पैठते ही ३ रावन का ४ बेटा......

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'पैठत' पद है। इसका संस्कृत रूप 'प्रविष्ट' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'प्र' में का 'अ' अपने से आगे के वर्ण समेत 'ऐ' हो गया है। सो नियम हुआ कि—

(७) कुछ संस्कृत शब्दों का आदिस्वर 'अ' चाहे ह्रस्व हो वा दीर्घ, प्राकृत हिन्दी में 'ऐ' हो जाता है। कभी कभी अगले वर्ण समेत होता है, कभी अकेला ही होता है। यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
पंड	पैंड़ा (मार्ग)	कपित्थ	कैथा
पादान्त	पैताना	पंच चत्वारिंशत् ...	पैंतालिस
पादात वा पदाति ...	पैदल	पंचत्रिंश	पैंतीस
मल	मैल	पंचषष्टि	पैंसठ

इत्यादि और भी जानो।

विवरण—इन शब्दों में से 'पैठाना' और 'कैथा' ऐसे बने हैं कि इनके मूल संस्कृत शब्दों के बीच का व्यंजन लोप हो गया, तब उनके उच्चारण में वर्णों की अतिशय निकटता के कारण 'ऐ' सा सुनाई देने लगा। जैसे, 'प्रविष्ट' में 'प्र' का 'प' हो गया। इसके विषय में हम आगे कहेंगे कि यह कैसे हो जाता है। फिर 'वि' का 'व' लोप हो गया

और 'इ' रह गई। फिर 'ष्ट' का 'ठ' बन गया। तब पहले 'पइठ' ऐसा बना फिर उच्चारण में 'प' और 'इ' की अतिशय निकटता से 'पैठ' बोला जाने लगा। इसमें 'व' का लोप और 'ष्ट' का 'ठ' कैसे हुआ यह बात आगे बताई जावेगी। इसी प्रकार 'कपित्थ' में 'प' का लोप हो जाने से 'कैथा' बन गया है। ऐसे ही और पदों के विषय में भी जानना चाहिए। यह नियम इने गिने शब्दों में लागू होता है। इसलिए यह साधारण नियम नहीं कहा जा सकता।

(चौ०) चोँच[२] भंग दुख तिनहिं[१] न[३] सूझा[४]

(अर्थ) १ उनको २ चोँच टूटने का दुःख ३ नहीं ४ सूझा।

(चौ०) मोर[१] हंस[२] सारस[३] पारावत[४]

(अर्थ) १ मोर २ हंस ३ सारस ४ कबूतर।

अवतरण—इन चौपाइयों में 'चोँच' और 'मोर' शब्द हमारे लक्ष्य हैं। इनका संस्कृत रूप क्रम से 'चञ्चु' और 'मयूर' है। इनमें हम देखते हैं कि शब्द का आदिस्वर 'अ' कहीं तो अकेला और कहीं अपने से आगे के वर्ण सहित 'ओ' हो गया है। सो विशेष नियम यह हुआ कि—

(८) संस्कृत के 'चञ्चु' आदि कुछेक शब्दों का आदिस्वर 'अ' (ह्रस्व वा दीर्घ) कहीं तो अकेला और कहीं अगले वर्ण सहित प्राकृत हिंदी में 'ओ' बनजाता है। जैसे—

संस्कृत	तद्भव
चञ्चु	चोंच
मयूर	मोर
पर्व	पोर (अँगुली आदि की गाँठ)
आर्द्र	ओदा

इत्यादि ।

(चौ०) कौड़ी[२] लागि लोभवश[१]

(अर्थ) १ लोभ के वश (२) कौड़ी के लिए ।

(चौ०) तजै[४] चौथि[१] के चन्द[२] कि नाईं[३]

(अर्थ) १ चौथ तिथि के २ चंद्रमा की ३ नाईं ४ छोड़ देवे, अर्थात् न देखे ।

(चौ०) चौदह[१] भुवन[२] एक[३] पति[४] होई[५]

(अर्थ) १ चौदहों २ लोक का ३ अकेला ४ स्वामी ५ होवे ।

अवतरण—इन ऊपर दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य (१) कौड़ी, (२) चौथि, (३) चौदह पद हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से ये हैं (१) कपर्दी, (२) चतुर्थी, (३) चतुर्दश । इनमें हम देखते हैं कि शब्द का आदिस्वर (अ) अपने से आगे के वर्ण समेत (औ) बन गया है । सो नियम हुआ कि—

(९) 'कपर्दी' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों का आदिस्वर 'अ' प्राकृत हिन्दी में अपने से आगे के वर्ण समेत 'औ' हो जाता है । यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
सपत्नी	सवति फिर सौत	चतुष्कोण	चौकोन
चतुर्विंश	चौबीस	चतुष्पदी	चौपाई
चतुस्त्रिंश	चौंतीस	चतुष्पुटी	चौपड़
चतुःशारि	चौंसर	चतुर्मुखी	चौमुखी

आदि प्रयोग होते हैं।

विवरण—इन प्रयोगों में से बहुत से 'चतुर' वा 'चतुः' से बने हुए हैं। उनको चाहे यह मान लो कि समूचे (चतुः) शब्द का (चौ) बन गया है चाहे ऐसा मानो कि आगे कहे जाने वाले नियम से चतुः शब्द के (त्) का लोप हो गया तब 'चउ' ऐसा हुआ, फिर उच्चारण में 'चउ' और 'चौ' समान सुनाई देने से 'चौ' हो गया। यह पिछला अनुमान मुझे ठीक जान पड़ता है।

इ वा ई

(छंद) तेहि[२] समउ[३] सुनिय[५] अशीस[४] जहँ तहँ[१]।

(अर्थ) १ जहाँ तहाँ २ उस ३ समय ४ अशीस ५ सुनी जाती है।

(चौ०) तब[१] धावा[५] करि[४] घोर[२] चिकारा[३]

(अर्थ) १ तब २ भयंकर ३ चीत्कार ४ कर के ५ दौड़ा

(छं०) इरिषा[१] परुषाच्छर[२] लोलुपता[३]

(अर्थ) १ ईर्ष्या २ कठोर वचन ३ लालच ।

२ १ ३
(चौ०) पियहिय की सिय जाननिहारी

(अर्थ) १ सीता २ पति के हृदय की ३ जाननेहारी ।

२ ३ १ ४
(दो०) नयन कान तव बीस

(अर्थ) १ तेरे २ आँख ३ कान ४ बीस हैं ।

२ ३ १ ४
(चौ०) तीस तीर रघुबीर पवारे

(अर्थ) १ रामचन्द्र ने २ तीस ३ बान ४ फेंके ।

अवतरण—ऊपर कहे हुए प्रमाणों में हमारे ये पद लक्ष्य हैं—(१) अशीस, (२) चिकारा, (३) इरिषा, (४) सिय, (५) बीस, (६) तीस, इनके संस्कृत रूप यों हैं ।

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
आशिष्	...अशीस वा आसीस	सीता	.... सिय
विंश	.... बीस	चीत्कार	...चिक्कार वा चिंघाड़
त्रिंश	.... तीस	ईर्ष्या	.... इरिषा

इनमें से एक भाग में हम देखते हैं कि संस्कृत शब्दों में ह्रस्व 'इ' है और वह तद्भव में दीर्घ हो गई है । फिर दूसरे भाग में हम देखते हैं कि दीर्घ 'ई' ह्रस्व 'इ' हो गई है । सो नियम हुआ कि—

(१०) संस्कृत के कुछेक शब्दों की ह्रस्व 'इ' प्राकृत हिन्दी में दीर्घ और दीर्घ 'ई' ह्रस्व हो जाती है । यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
तित्तिरि	तीतर	स्त्री	तिरिया वा तिय
पिप्पल	पीपल	दीप	दिया
इन्धन	ईंधन	दीपावली	दिवाली
प्रियतम	पीतम		

इत्यादि ।

विवरण—इनमें से तीतर, पीपल, और ईंधन हमारे तीसरे नियम से सिद्ध हो जाते हैं। नवाँ नियम अधिक व्यापक न होने के कारण असाधारण है ।

(चौ०) हरद[1] दूब[2] दधि[3] पल्लव[4] फूला[5]

(अर्थ) १ हरदी २ दूब ३ दही ४ पल्लव (पत्ते) ५ फूल—

अवतरण—इस चौपाई में हरद शब्द आया है जिसका संस्कृत रूप 'हरिद्रा' है। इसमें हम देखते हैं कि 'रि' की 'इ' का 'अ' हो गया है। इस प्रकार के प्रयोग बहुत नहीं मिलते तो भी कुछ मिलते हैं। इसलिए नियम यह हुआ कि—

(११) 'हरिद्रा' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों के मध्य की 'इ' को प्राकृत हिन्दी में 'अ' हो जाता है। यथा—

संस्कृत	तद्भव
धरित्री	धरती
हरिणी	हिरनी (मृगी)
हरिद्वार	हरद्वार

विवरण—इन उदाहरणों में हम एक विशेष बात देखते हैं, कि किसी भी उदाहरण के शब्द तीन अक्षर से कम के नहीं हैं। फिर यह भी देखते हैं कि हर एक का तीसरा अक्षर दीर्घ है और उससे पूर्व सर्वत्र 'रि' अक्षर आया है।

इन बातों को ध्यान में रखकर हम यह समझ सकते हैं कि संस्कृत शब्द तीन अक्षर से कम का न हो, और उसका तीसरा अक्षर अवश्य दीर्घ हो, तथा बीच का अक्षर 'रि' हो, तब इस नियम की प्रवृत्ति होगी। यह बुद्धिमानों के लिए विचारणीय है।

४ ५ ६ १ २ ३
(चौ०) का छति लाभ जून धनु तोरे

(अर्थ) १ पुराना २ धनुष ३ तोड़ने से ४ क्या ५ हानि (वा) ६ लाभ ?

१ २ ४ ३
(दो०) अयमय खाँड़ न ऊखमय

(अर्थ) १ लोहमय २ तोड़ा है (कुछ) ३ ऊखमय ४ नहीं—

२ ४ १ ३
(चौ०) बुन्द अघात सहैं गिरि कैसे

(अर्थ) १ पहाड़ २ बून्दों की चोट ३ कैसे ४ सहते हैं।

अवतरण—इनमें हमारे लक्ष्य क्रम से ये हैं—(१) जून, (२) ऊख, (३) बुन्द। इनके संस्कृत रूप ये हैं—

संस्कृत	तद्भव
जीर्ण........................	जून
इक्षु........................	ऊख

बिन्दु........................बूँद वा बुन्द

इन पर ध्यान देने से जाना जाता है कि 'इ' वा 'ई' को 'उ' वा 'ऊ' हो गया है। सो नियम होता है कि—

(१२) 'जीर्ण' आदि कुछेक शब्दों की 'इ' वा 'ई' को प्राकृत हिन्दी में 'उ' वा 'ऊ' हो जाता है।

इसके और उदाहरण हमारे ध्यान में नहीं आये, कदाचित् होंगे।

४ ३ ५ २ १

(चौ०) दुइ कि होहिं एक समउ भुआला

(अर्थ) १ हे राजा २ एक समय में ३ क्या ४ दो बातें ५ होती हैं ?

१ २ ४ ३

(चौ०) दुघरी साधि चले ततकाला

(अर्थ) १ दुघड़ी का मुहूर्त २ देखकर ३ उसी समय ४ चले।

अवतरण—इनमें हमारे लक्ष्य ये हैं—(१) दुइ, (२) दुघड़ी। इनका संस्कृत रूप क्रम से (१) द्वि, (२) द्विघटी हैं। इनमें हम देखते हैं कि 'द्वि' का एक स्थान में तो 'दुइ' और दूसरे स्थान में 'दु' हो गया है। सो नियम हुआ कि—

(१३) संस्कृत संख्यावाची 'द्वि' शब्द को प्राकृत हिन्दी में कभी 'दुइ' और कभी 'दु' हो जाता है। यथा दुमुहाँ साँप, दुबिधा, दुचित्ता आदि

१ २ ३ ४ ५

(चौ०) राम सीय सिर सेंदुर देहीं

(अर्थ) १ राम २ सीता के ३ सिर में ४ सेंदुर ५ देते हैं ।

(चौ०) बेलपात[1] महि[3] परे[2] सुखाई

(अर्थ) १ बेलपत्ती २ सूखकर ३ धरती पर पड़ी ।

अवतरण—यहाँ हमारे लक्ष्य (१) सेंदुर और (२) बेलपात हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से ये (१) सिन्दूर और (२) बिल्वपत्र हैं । यहाँ हम देखते हैं कि 'इ' को 'ए' हो गया है । सो नियम हुआ कि—

(१४) 'सिन्दूर' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों की 'इ' को प्राकृत हिन्दी में 'ए' हो जाता है । यथा—

संस्कृत	तद्भव
पिण्ड	पेड़ (वृक्ष) फिर पेड़ा (मिठाई)
बिन्दु	बेंदी (टिकुली)
तिन्दुक	तेंदू (फल)
सिन्धु	सेंधा (नमक)

विवरण—'सेंधा' 'सैन्धव' का विकृत रूप है, तो भी मूल शब्द 'सिन्धु' ही है ।

(चौ०) सींक[2] धनुष[1] सायक[3] संधाना[4]

(अर्थ) १ धनुष पर २ सींक का ३ बान ४ चढ़ाया ।

इसमें हमारा लक्ष्य 'सींक' पद है । इसका संस्कृत रूप 'इषीका' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'इषीका' शब्द के आदि की 'इ' का लोप हो गया है । सो विशेष नियम यह हुआ कि—

(१५) 'इषीका' संस्कृत शब्द की 'इ' प्राकृत हिन्दी में लोप हो जाती है। यथा 'इषीका' से 'सींक'।

(उ वा ऊ)

१ ३ २ ४
(चौ०) इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं

(अर्थ) १ यहाँ २ कोई ३ कुम्हड़े की बतिया ४ नहीं है।

अवतरण—इस चौपाई में 'कुम्हड़' शब्द हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'कूष्माण्ड' है। इसमें हम देखते हैं कि शब्द का आदिस्वर 'ऊ' ह्रस्व हो गया है। इससे यह नियम निकलता है कि—

(१६) 'कूष्मांड' आदि कुछेक शब्दों के आदिस्वर 'ऊ' को ह्रस्व हो जाता है। यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
कूप	कुआ	शूकर	सुअर
पूप	पुआ	सूची	सुई
धूम	धुआँ	सूपकार	सुआर

विवरण—यद्यपि नियम में आदि स्वर कहा गया है क्योंकि आदि स्वर को ही बहुधा ऐसा होता है, परन्तु कभी कभी मध्य 'ऊ' का भी ह्रस्व हो जाता है। जैसे, संस्कृत 'मधूक' से प्राकृत हिन्दी 'महुआ' इत्यादि।

१ २ ४ ५ ३
(चौ०) टूट चाप नहिं जुरै रिसाने

(अर्थ) १ टूटा २ धनुष ३ रिसाने से ४ नहीं ५ जुड़ेगा।

१ २ ४ ३
(चौ०) कूबर टूटेउ फूट कपारू

(अर्थ) १ कूबर २ टूट गया ३ कपार ४ फूट गया ।

अवतरण—इन चौपाइयों में (१) टूट और (२) फूट हमारे लक्ष्य हैं। इनका संस्कृत रूप क्रम से (१) त्रुट और (२) स्फुट हैं। यहाँ हम देखते हैं कि शब्द का आदि स्वर ह्रस्व 'उ' दीर्घ हो गया है। इससे यह नियम हुआ कि—

(१७) कुछ संस्कृत शब्दों के आदि स्वर ह्रस्व 'उ' का प्राकृत हिन्दी में दीर्घ हो जाता है। यथा—

संस्कृत		तद्भव
गुण	....	गून (नाव खींचने की रस्सी)
मुष्	....	मूसना (चोरी करना)
बुस	....	बूसा वा भूसा
कुकुर	....	कूकुर

आदि।

विवरण—'कुकुर' से 'कूकुर' हमारे तीसरे नियम से भी सिद्ध होता है।

१ २ ३ ४
(चौ०) अगरु प्रसंग सुगंध बसाई

(अर्थ) १ अगरु के २ प्रसंग से ३ सुगंध ४ बसाता है।

अवतरण—इसमें हमारा लक्ष्य 'अगरु' शब्द है। इसका संस्कृत रूप 'अगुरु' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'अगुरु' शब्द के 'गु' का 'उ' 'अ' बन गया है। सो नियम हुआ कि—

(१८) कुछेक संस्कृत शब्दों के 'उ' का प्राकृत हिन्दी में 'अ' हो जाता है। यथा—

संस्कृत—(१) गुरु (२) मुकुट (३) मुकुन्द

तद्भव—(१) गरू (भारी), (२) मकुट या मुकट (३) मकुन्द या मुकन्द, इत्यादि।

संस्कृत के 'नूपुर' शब्द को प्राकृत हिन्दी में कहीं कहीं 'नेउर' कहते हैं; परन्तु मानस में 'नेउर' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता।

(चौ०) पायप[४] लोटिहि[५] सब[२] निशि[३] दासी[१]

(अर्थ) १ दासी २ सब ३ रात ४ पाँवों पर ५ लोटेगी।

अवतरण—इस चौपाई में 'लोटिहि' क्रियापद हमारा लक्ष्य है, जो संस्कृत 'लुट्' धातु से बना है। इससे जाना जाता है कि—

(१९) कुछ संस्कृत शब्दों के आदि स्वर 'उ' वा 'ऊ' का प्राकृत हिन्दी में 'ओ' हो जाता है। यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
तुन्द	तोंद	मुद्गर ...	मोगदर, मोगरा मोगरी
तुण्ड	टोंट	कुक्षि ...	कोख वा कोछी
चूड़ा	चोटी	शुंठी	सोंठ
उलूखल ...	ओखली	मुस्ता	मोथा
कुष्ट	कोढ़	पुस्तक	पोथी

विवरण—उलूखल शब्द का 'उल्' छोड़ दिया गया है। यों

भी कह सकते हैं कि उसका लोप हो गया है और शेष (ऊखल) से 'ओखरी' बना है ।

(दो०) देखा[३] उदित[१] मयंक[२]

(अर्थ) १ उदय हुए २ चन्द्रमा को ३ देखा ।

अवतरण—इस दोहे में हमारा लक्ष्य पद 'मयंक' है । इसका संस्कृत रूप 'मृगांक' है । इसमें हम तीन प्रकार के विकार देखते हैं । (१) 'ऋ' का, (२) 'ग' का, (३) 'ग' में के 'आ' का । 'आ' के विकार होने के विषय में हमने 'अ' के विकार होने के प्रकरण में बतलाया है । 'ग' के विषय में 'ग' के प्रकरण में कहा जायगा । शेष 'ऋ' का प्रकरण यहाँ है, उसी के विषय में लिखा जाता है । हम देखते हैं कि 'मृगांग' शब्द की 'ऋ' का 'अ' हो गया है । सो नियम हुआ कि—

(२०) 'मृगांक' आदि कुछ संस्कृत शब्दों की 'ऋ' को प्राकृत हिन्दी में ह्रस्व वा दीर्घ 'अ' हो जाता है । यथा—

संस्कृत—(१) प्रावृष, (२) कृष्ण, (३) शृंखला, (४) मृत्तिका ।
तद्भव—(१) पावस, (२) कान्ह, (३) साँकल, (४) मट्टी माटी वा मिट्टी ।

इस प्रकार के शब्द थोड़े ही हैं सो २० वें नियम को साधारण नियम न समझना चाहिए ।

(चौ०) लछिमन राम सरिस[१] सुत[२] पाये

(अर्थ) १ लक्ष्मण राम सरीखे पुत्र २ पाये ।

अवतरण—इस चौपाई में 'सरिस' पद हमारा लक्ष्य है । यह संस्कृत 'सदृश' का तद्भव है । यहाँ हम देखते हैं कि 'सदृश' शब्द की 'दृ' के दकारांश का लोप होकर 'ऋ' का 'रि' हो गया है । सो विशेष नियम यह हुआ कि—

(२१) संस्कृत 'सदृश' शब्द की (ऋ) प्राकृत हिन्दी में (रि) हो जाती है । यथा सदृश से सरिस ।

२ ६ ५ १ ३ ४

(चौ०) जिन्ह के लहहिं न रिपु रन पीठी

(अर्थ) १ शत्रु २ जिन के ३ रन में ४ पीठ ५ नहीं ६ पाते ।

४ ५ १ २ ३

(चौ०) नहिं लावहिं परतिय मन दीठी

(अर्थ) १ पर स्त्री में २ मन (और) ३ दृष्टि ४ नहीं ५ लगाते ।

३ ४ १ २

(चौ०) कृषी निरावहिं चतुर किसाना ।

(अर्थ) १ चतुर २ किसान ३ खेती ४ निराते हैं ।

२ १ ४ ३

(चौ०) शिवहिं शंभुगन करहिं सिंगारा

(अर्थ) १ महादेव जी के गण २ शिव जी का ३ शृंगार ४ करते हैं ।

अवतरण—इन चौपाइयों में (१) पीठी (२) दीठी (३) किसाना ४ सिंगारा पद हमारे लक्ष्य हैं । इनके संस्कृत रूप ये हैं ।

संस्कृत (१) पृष्ठ, (२) दृष्टि, (३) कृषाण, (४) शृंगार ।
तद्भव (१) पीठ (२) दीठि (३) किसान (४) सिंगार ।

इन उदाहरणों में हम देखते हैं कि सर्वत्र (ऋ) को 'इ' वा 'ई' हो गई है, सो नियम निकलता है कि

(२२) 'पृष्ठ' आदि संस्कृत शब्दों की 'ऋ' प्राकृत हिन्दी में बहुधा 'इ' वा 'ई' हो जाती है । यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
कृष्ण	किसन	मृग	मिरगा
शृगाल	सियार	सृज	सिरजना
वृश्चिक	बीछी	कृत	किया
कृपा	किरपा	हृदय	हिरदय
मृदंग	मिरदंग	तृण	तिन
धृष्ट..................	ढीठ	शृंग	सींग

इत्यादि और भी बहुत से हैं ।

१　४　३　　२
(चौ०) मुए करै का सुधा-तड़ागा

(अर्थ) १ मरने पर २ अमृत का तालाब ३ क्या ४ कर सकता है ।

२　　१　　३　　४
(चौ०) रूख कल्पतरु सागर खारा

(अर्थ) १ कल्पवृक्ष को (तो) २ पेड़ (और) ३ समुद्र को ४ खारा ।

अवतरण—इन चौपाइयों में (१) मुए और (२) रूख पद हमारे लक्ष्य हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से (१) मृत और (२) वृक्ष

हैं। यहाँ हम देखते हैं कि 'ऋ' का 'उ' हो गया है । सो यह नियम निकलता है कि—

(२३) कुछेक संस्कृत शब्दों की 'ऋ' का प्राकृत हिन्दी में 'उ' वा 'ऊ' हो जाता है । यथा—

संस्कृत—(१) पितृ, (२) मातृ, (३) वृद्ध, (४) पृथ्वी, (५) प्रच्छ से पृच्छ,

तद्भव—(१) पितु, (२) मातु, (३) बूढ़ा, (४) पुहुवि, (५) पूछना, इत्यादि ।

(ए)

(चौ०) छवि[2] सिंगार[3] मनहु[1] इकठौरी[4]

अर्थ १ मानो २ छवि (और) ३ शृंगार ४ इकट्ठे हुए हैं ।

अवतरण—इस चौपाई में 'इकठौरी' पद हमारा लक्ष्य है जो संस्कृत 'एकत्र' का तद्भव है । यहाँ हम देखते हैं कि 'ए' को 'इ' हो गई है । सो नियम हुआ कि—

(२४) कुछेक संस्कृत शब्दों का 'ए', 'इ' हो जाता है ।

यथा—संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
एला	इलायची	केदार	कियारी
पेटिका	पिटारी	एकविंश	इक्कीस
पेषण	पीसना	एकत्रिंश	इकतीस
सेचन	सींचना	एकत्र	इकट्ठा

(ऐ)

(से॰) सुनि केवट के बैन

(अर्थ) १ केवट के २ वचन ३ सुन कर—

(चौ॰) संबुक भेक सिवार समाना

(अर्थ) १ घोंघा २ मेंढ़क ३ काई के ४ समान—

अवतरण—ऊपर दिये प्रमाणों में (१) केवट और (२) सिवार शब्द हमारे लक्ष्य हैं। इनका संस्कृत रूप (१) कैवर्त और (२) शैवल है। यहाँ हम देखते हैं कि एक स्थान में 'ऐ' का 'ए' और दूसरे स्थान में 'इ' हो गया है। सो नियम यह हुआ कि—

(२५) इने गिने संस्कृत शब्दों का 'ऐ' प्राकृत हिन्दी में कहीं तो 'ए' और कहीं 'इ' वा 'ई' हो जाता है; जैसे, संस्कृत 'धैर्य' का तद्भव 'धीरज' तैल से तेल इत्यादि।

विवरण—'शैवल' के दो तद्भव हैं (१) सेवार (२) सिवार।

(ओ)

'ओ' का विकार नहीं होता। यदि होता हो तो हमारे ध्यान में न आया समझना चाहिए। केवल 'गोधूम' से 'गेहूँ' बोलते हैं, परन्तु जानना चाहिए कि यह उर्दू की कृपा से हुआ है और नागरिक लोग बोलने लगे 'प्राकृत शब्द गोहूँ है'। नगर और गाँव में कहीं कहीं यह अब तक बोला जाता है। कभी कभी किसी किसी पद में 'ओ' का 'उ' हो गया सा जान पड़ता है। परन्तु यदि ध्यानपूर्वक

विचार से देखा जाय तो वह 'व' का ठहरता है। जैसे—'उहार' अथवा 'उदरना' वा 'लून' वा 'नून' ये शब्द हैं। इनके संस्कृत रूप क्रम से 'अवधार', 'अवदारण' और 'लवण' हैं। 'अवधार' से 'ओहार' होता है, फिर 'ओहार' से 'उहार' बन जाता है। ऐसे ही 'अवदा-रण' से 'ओदरना', फिर 'ओदरना' से 'उदरना' हो जाता है। 'लवण' से 'लोन' और 'लोन' से 'लून' हुआ है।

(औ)

(चौ०) कमल[३] दलन्हि बैठे[४] जनु[१] मोती[२]

(अर्थ) १ मानो २ मोती ३ कमलदलों में ४ लगे हैं।

(छंद) चली[३] कोहबर[२] ल्याइके[१]

(अर्थ) १ लेकर २ कोहबर को ३ चली।

(दो०) सीय-सहित[१] सुत[४] सुभग[३] दोउ[२]

(अर्थ) १ सीता सहित २ दोनों ३ सुन्दर ४ बेटों को—

अवतरण—ऊपर दिये प्रमाणों में हमारे लक्ष्य (१) मोती, (२) कोहबर, (३) दोउ हैं। इनके संस्कृत रूप क्रम से ये हैं—

संस्कृत,	(१) मौक्तिक,	(२) कौतुक गृह (घर),	(३) द्वौ।
तद्भव,	(१) मोती,	(२) कोहबर,	(३) दोउ।

इनमें हम देखते हैं कि 'औ' को 'ओ' हो गया है। सो नियम होता है कि:—

(२६) कुछेक संस्कृत शब्दों का, 'औ' प्राकृत हिन्दी में 'ओ' हो जाता है। यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
कौपीन	कोपीन	सौभाग्य	सोहाग
प्रौढ़	पोढ़ा	पौत्र	पोता
यौवन	जोबन	दौहित्र	दोहिता

इत्यादि।

'य' और 'व' को अर्द्ध स्वर जानकर उनकी चर्चा हम स्वर और व्यंजनों के बीच में—यहीं पर—करना उचित समझते हैं।

(य)

(चौ०) विंजन[२] बहु[१] गनि[५] सकै[४] न[४] कोई[३]।

(अर्थ) १ बहुत प्रकार के २ बिंजन (पदार्थ) ३ कोई ४ नहीं ५ गिन सकता।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'विंजन' पद है। इसका संस्कृत रूप 'व्यंजन' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'य', 'इ' हो गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२७) संस्कृत शब्द के आदि में संयोग का पिछला वर्ण यदि 'य' होवे तो वह 'य' प्राकृत हिन्दी में 'इ' हो जाता है; और यदि 'य' से परे दीर्घ 'आ' होवे तो 'य' को 'इय' होता है। यथा—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
व्यजन ...	बिजना (पंखा)	व्यतीत...............	बितीत
व्यथा......	बिथा (पीड़ा)	व्यसनी...............	बिसनी
व्यंग......	बिंग (वचन)	व्यतीपात............	बितीपात
व्यतिक्रम	बितिक्रम	व्याधि.........	बियाध (ब्याध)
....		व्यास	बियास

इत्यादि और भी बहुत हैं ।

(चौ०) अब[१] आनिय[४] बेउहरिया[२] बोली[३] ।

अर्थ (१) अब (२) बेउहर (महाजन वा धनी) को ३ बुला कर ४ लाइये ।

(चौ०) देखु[२] जनक[१] हठि[५] बालक[४] एहू[३]

(अर्थ) १ हे जनक २ देख ३ यह ४ बालक ५ हठ करके—

अवतरण—इन चौपाइयों में हमारे लक्ष्य (१) बेउहरिया और (२) एहू हैं । इनमें से एक संस्कृत का तद्भव है दूसरा हिन्दी का शब्द है, अर्थात् 'बेउहरिया' संस्कृत 'व्यवहारी' का तद्भव है और 'एहू' हिन्दी 'यह' का तद्भव है । यहाँ हम देखते हैं कि 'य' का 'ए' हो गया है । सो यह नियम हुआ कि:—

(२८) कुछ संस्कृत शब्द के आदि के संयोग में यदि पिछला वर्ण 'य' होवे और उससे परे 'व' होवे तो प्राकृत हिन्दी में 'य' को 'ए' हो जाता है । जैसे:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
व्यवहार	बेउहार (ब्यौहार)	व्यवसाय	बेउसाय
व्यवस्था	बेवस्था	व्यवधान	बेउधान

इत्यादि और भी जानना ।

(चौ०) जदपि[२] सुनहिं[५] मुनि[१] अटपट[३] बानी[४] ।

(अर्थ) १ मुनि २ यद्यपि ३ गूढ़ ४ बातें ५ सुनते हैं ।

(चौ०) जेठ[१] स्वामि[२] सेवक[५] लघु[३] भाई[४] ।

(अर्थ) १ जेठा भाई २ स्वामी होता है ३ छोटे ४ भाई ५ सेवक होते हैं ।

अवतरण—इन चौपाइयों में हमारे लक्ष्य (१) जदपि और (२) जेठ पद हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से (१) यद्यपि और (२) ज्येष्ठ हैं । 'जदपि' में हम दो बातें देखते हैं, एक तो यह कि 'य' को 'ज' हुआ है, और दूसरे यह है कि 'द्य' का तथा 'ज्येष्ठ' शब्द के 'ज्ये' का 'य' लोप होगया है । सो नियम यह हुआ कि

(२९) संस्कृत शब्द के असंयुक्त 'य' का बहुधा प्राकृत हिन्दी में 'ज' हो जाता है, और जब संयुक्त 'य' का पूर्व वर्ण रेफ हो, तब भी 'ज' होता है परन्तु ऐसी दशा में संयोग के वर्ण अलगाये जाते हैं, शेष संयोग का 'य' बहुधा लोप हो जाता है । यथा

'य' का 'ज'

संस्कृत	तद्भव
(१) यथा,	(१) जथा,
(२) योग,	(२) जोग,
(३) सूर्य,	(३) सूरज,
(४) यमुना,	(४) जमुना,
(५) युवती,	(५) जुवती,
(६) यौवन,	(६) जोबन,
(७) आर्य ।	(७) आरज वा आजा ।

आदि बहुत हैं ।

'य' का लोप

(१) संस्कृत श्यामल से साँवर, (२) अवश्य से अवस, (३) भाग्य से भाग, (४) वैद्य से बैद, (५) कल्य से काल्ह, (६) वैश्य से बैस आदि ।

(चौ०) नर[1] भव[2] तरहिं[3] उपाव[5] न[6] दूजा[4]

(अर्थ) १ मनुष्य २ संसार ३ तरते हैं ४ दूसरा ५ उपाय ६ नहीं है ।

(चौ०) आन[2] उपाउ[3] न[4] देखिय[5] देवा[1]

(अर्थ) १ हे देवताओ २ दूसरा ३ उपाय ४ नहीं ५ देखा जाता ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'उपाव' और 'उपाउ' हैं। इन दोनों का संस्कृत रूप 'उपाय' है। यहाँ हम देखते हैं कि एक स्थान में 'य' का 'व' हो गया है और दूसरे स्थान में 'उ' हुआ है। सो नियम होता है कि:—

(३०) यदि संस्कृत शब्द के अन्त में 'य' सुनाई देता हो तो उसका कहीं 'व' और कहीं 'उ' वा 'ऊ' होता है। जैसे

संस्कृत (१) समय (२) उपाय

तद्भव (१) समव वा समउ, (२) उपाव वा उपाउ (ऊ) आदि

विवरण—मुख्य परिवर्तन 'य' का 'व' ही समझना चाहिए। फिर 'व' से 'उ' होता है। जैसा कि हम आगे 'व' का 'उ' होने के प्रकरण में बतावेंगे। इस प्रकार हमने 'य' के चार विकार बताए। 'य' का 'इ' और 'ए' और लोप, फिर 'ज' तथा 'व'। इन में से 'इ' विकार होना प्राकृत जान पड़ता है, क्योंकि उन दोनों का स्थान एकही है। फिर 'ज' भी प्राकृत है क्योंकि उसका स्थान वही है जो 'य' का है। फिर 'ए' प्राय: तब होता है जब कि 'य' संयुक्त होकर संस्कृत शब्द के बीच में हो और उससे परे 'व' वर्ण हो। हिन्दी के 'यह' सर्वनाम के 'य' को 'ए' कवि की स्वतन्त्रता के कारण से होता है। संयुक्त 'य' का लोप प्राय: शब्द के अन्त में होता है और कभी कभी मध्य में भी होता है फिर 'व' विकार बहुत थोड़े शब्दों में होता है और तब होता है जब कि असंयुक्त 'य' शब्दान्त में होता है॥

(व)

१ २ ३ ४

(चौ०) जासु सुभाव अरिहु अनुकूला ।

(अर्थ) १ जिसका २ स्वभाव ३ शत्रु के लिए भी ४ भलाई करने वाला है ।

१ २ ३

(दो०) निज आश्रमन्हि सुछन्द

(अर्थ)) १ अपने अपने २ आश्रमों में ३ स्वच्छन्द रूप से—

४ १ ३ २

(दो०) राखेसि कोउ न सुतन्त्र

(अर्थ) १ किसी को २ स्वतंत्र ३ नहीं ४ रक्खा ।

१ २

(दो०) जय धुनि वंदी वेद धुनि

(अर्थ) १ जयकी ध्वनि (और) २ वंदी लोगों की और वेद की ध्वनि—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में (१) सुभाव, (२) सुछन्द, (३) सुतन्त्र और (४) धुनि पद हमारे लक्ष्य हैं। इनका संस्कृत रूप ऐसा है—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
स्वभाव	सुभाव	स्वतंत्र	सुतंत्र
स्वच्छन्द.........	सुछन्द	ध्वनि	धुनि

इनमें हम देखते हैं कि प्रत्येक संस्कृत शब्द के आदि में 'व' संयुक्त है परन्तु तद्भव में उसका रूप पलट कर 'उ' बन गया है, जैसे 'सुभाव' आदि में। सो नियम होता है कि:—

(३१) 'स्वभाव' आदि कुछ संस्कृत शब्दों के 'व' को प्राकृत हिन्दी में 'उ' हो जाता है। यथा

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
स्वर	सुर	स्वस्त्ययन	सुस्तेन
श्वपच	सुपच	त्वचा	तुचा
स्वकीया	सुकीया	ध्वजा	धुजा

इत्यादि और भी अनेक हैं॥

(चौ०) यह[२] सपना[३] मैं[१] कहौं[५] विचारी[४]

(अर्थ) १ मैं २ यह ३ सपना ४ विचार कर ५ कहती हूँ।

(चौ०) ससुर[१] यतादृश[२] अवध[३] निवासू[४]

(अर्थ) १ ससुर २ ऐसा (फिर) ३ अयोध्या में का ४ रहना—

(चौ०) प्रिय[१] परिवार[२] मातु[३] सम सासू[४]

(अर्थ) १ प्यारा २ परिवार ३ माता के समान ४ सास हैं।

(चौ०) जबहिं[१] राम[२] कहि[३] लेहिं[५] उसासा[४]

(अर्थ) १ जब २ राम ३ कहकर ४ ऊँची साँस ५ लेते हैं।

अवतरण—इन दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य क्रम से ये हैं—(१) सपना, (२) ससुर, (३) सासू, (४) उसासा। इनके संस्कृत रूप ये हैं—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
स्वप्न	सपना	श्वश्रू	सास वा सासू
श्वसुर	ससुर	उत् + श्वास	उसास

इन में हम देखते हैं कि प्रत्येक संस्कृत शब्द का आदि अक्षर 'व' से संयुक्त है। परन्तु तद्भव में 'व' का लोप हो गया, इससे यह नियम निकलता है कि:—

(३२) 'स्वप्न' आदि कुछ संस्कृत शब्दों के 'व' का प्राकृत हिन्दी में लोप हो जाता है। यथा:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
ज्वर	जर	स्वर्ग	सरग
उज्ज्वल	उज्जल वा उजरा	स्वरूप	सरूप
ज्वलन	जलन	विध्वंस	बिधंस
		प्रविष्ट	पैठ।

यहाँ असंयुक्त 'व' का लोप हुआ है।

इत्यादि और भी अनेक हैं।

विवरण—कुछ शब्दों में ऊपर कहे हुए दोनों नियमों के कार्य होते हैं, अर्थात् कभी 'उ' होता है और कभी लोप। यथा स्वप्न से सपना वा सुपना, ध्वजा से धजा वा धुजा ज्वर से जर वा जुर इत्यादि।

(चौ०) लोन[२] विना[३] बहु[४] विंजन[५] जैसे[१]

(अर्थ) १ जैसे २ लोन के ३ बिना ४ बहुत प्रकार के ५ व्यंजन।

अवतरण—इस ऊपर की चौपाई में 'लोन' पद हमारा लक्ष्य है । इसका संस्कृत रूप 'लवण' है । इसमें हम देखते हैं कि 'व' अपने पूर्व स्वर 'अ' के साथ 'ओ' बन गया है । सो नियम हुआ कि:—

(३३) किसी किसी संस्कृत शब्द का असंयुक्त 'व' अपने से पूर्व 'अ' के साथ 'ओ' हो जाता है । यथा:—

संस्कृत (१) अवधार, (२) अवदारण, (३) धावन ।

तद्भव (१) ओहार, (२) ओदारना, (३) धोना ।

इत्यादि ।

(चौ०) आशुतोष[2] तुम्ह[1] औढर[3] दानी

(अर्थ) १ तुम २ शीघ्र प्रसन्न होने वाले (और) (अव + ढर = औढर) 'अव' से नम्र और 'ढर' से ढलनेहारे, अर्थ यह हुआ कि (—) प्रणत पर दया करने के दानी हो ।

अवतरण—जिस पुस्तक से हमने उदाहरण अधिक लिये हैं, उसमें 'अवढर' पाठ है परन्तु और बहुत पुस्तकों में 'औढर' पाठ है । सो हमने यहाँ 'औढर' ही माना है । 'औढर' शब्द आधा संस्कृत और आधा हिन्दी है । जैसा ऊपर हमने दिखलाया है कि (अव + ढर) इसमें 'अव' तो संस्कृत है परन्तु 'ढर' हिन्दी है । इसमें हम देखते हैं कि 'अव' को 'औ' हो गया है अर्थात् 'व' अपने से पूर्व स्वर 'अ' के साथ 'औ' बन गया है । इससे यह नियम निकला कि

(३४) कुछेक शब्दों का 'व' अपने से पूर्व 'अ' वा 'आ' सहित 'औ' बन जाता है, यथा:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
धवल	धौला वा धौरा	अवसेरु	औसेर (देर)
पवन	पौन (वायु)	सपत्नि	सवति फिर सौत
कवल	कौर (ग्रास)	अवतार	औतार
भवन	भौन (गृह)	अवगुण	औगुन
अवसर	औसर (समय)	अवघट्ट	औघट
आवर्तन	औटना खौलना	अवधान	औधान (गर्भ)

इत्यादि और भी हैं

(चौ०) बहै न हाथ दहै रिस छाती

(अर्थ) १ हाथ २ नहीं ३ चलता (और) ४ छाती ५ रिस से ६ जलती है।

(चौ०) करिहौं बाउ मुदित मन माहीं

(अर्थ) १ मन में २ प्रसन्न ३ बयार ४ करूँगी।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हमारे लक्ष्य (१) बहै और (२) बाउ हैं। इनका संस्कृत रूप क्रम से 'वह' धातु और 'वायु' शब्द हैं। इनमें हम देखते हैं कि 'व' के स्थान में 'ब' हो गया है। सो नियम हुआ कि:—

(३५) संस्कृत शब्दों के आदि 'व' को प्राकृत हिन्दी में 'ब' हो जाता है। यथा:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
वानर	बन्दर	वेद	बेद
विद्या	बिद्या	विधि	बिधि
वन	बन	विविध	बिबिध
विहार	बिहार	वायु	बयार

आदि।

(चौ०) लंका[१] बांके[२] चारि[३] दुआरा[४]

(अर्थ) १ लंका में २ बाँके ३ चार ४ द्वार हैं।

अवतरण—इसमें हमारा लक्ष्य 'दुआरा' पद है। इसका संस्कृत रूप 'द्वार' है। यहाँ हम देखते हैं कि (द् + व् + आ = द्वा) 'द' 'व' और दीर्घ 'आ' है। उसका विकार 'दुआरा' हुआ है, अर्थात् 'व्' का 'उव्' होकर फिर 'उव्' के 'व्' का लोप हो गया है। इससे यह नियम हुआ कि:—

(३६) कभी कभी विशेष करके 'द्वा' अक्षर के 'व्' का 'उव्' होता है और 'उव्' में का 'व्' कभी कभी लोप हो जाता है। यथा—

संस्कृत—(१) द्वार, (२) द्वादशी।

तद्भव —(१) दुआरा वा दुवारा, (२) दुआस वा दुवादसी।

विवरण—इस प्रकार हमने 'व' के विकार दिखलाये, अर्थात् कहीं 'व' का 'उ' कहीं 'ओ' कहीं 'औ' कहीं लोप कहीं 'ब' और कहीं 'उव्' होकर उसमें के 'व्' का विकल्प से लोप होता है। एक

शब्द है, अर्थात् 'स्वादु' यह संस्कृत है। इसका प्राकृत हिन्दी में कहीं तो 'सेवाद' रूप होता है और कहीं 'सवाद' होता है।

अब हम दो नियम ऐसे बताते हैं जो प्राकृत हिन्दी के कारण नहीं होते बरन् उनमें से एक तो छन्द की मात्रा-पूर्ति के कारण स्वर का विकार होता है और दूसरा कवि की स्वतन्त्रता के कारण होता है।

(चौ०) वन्दौं[२] गुरु पद पदुम[१] परागा

(अर्थ) १ गुरु के चरण कमल की धूलि की २ बन्दना करता हूँ।

(चौ०) मीन[१] कमठ[२] सूकर[३] नरहरी[४]

(अर्थ) १ मत्स्य २ कच्छप ३ वराह ४ नृसिंह।

(चौ०) अमिय[१] मूरिमय चूरन[३] चारू[२]

(अर्थ) १ अमृत मूलमय २ सुन्दर ३ चूरन—

(चौ०) सुनि[३] तव[१] भगिनि[२] करी[५] परिहासा[४]

(अर्थ) १ तेरी २ बहिन ३ सुनकर ४ ठट्ठा ५ किया—

अवतरण—इन ऊपर की चौपाइयों में हमारे लक्ष्य क्रम से ये हैं—

(१) परागा, (२) नरहरी, (३) चारू और (४) भगिनि। इनका शुद्ध रूप क्रम से (१) पराग, (२) नरहरि, (३) चारु और (४) भगिनी वा भग्नी है। इनमें हम देखते हैं कि कहीं तो स्वर

ह्रस्व का दीर्घ कर दिया गया है और कहीं दीर्घ का ह्रस्व । और यह इसलिए कि छन्द की मात्रा पूरी हो जाय । सो नियम होता है कि:—

(३७) मानस आदि छन्द के ग्रन्थों में कभी कभी स्वर, छंद की मात्रा की संख्यापूर्ति के निमित्त ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व हो जाता है ।

५ ४ ३ १ २

(चौ०) सकै न बोलि विकल नरनाहू

(अर्थ) १ व्याकुल २ राजा ३ बोल ४ नहीं ५ सकता ।

२ १ ३ ४

(चौ०) शोक जनित उर दारुन दाहू

(अर्थ) १ हृदय में २ शोक से उत्पन्न हुआ ३ दारुण (कठिन) (४) दाह है ।

१ ५ २ ३ ४

(चौ०) तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू

(अर्थ) १ हे पिता २ प्यारे के ३ प्रेम के ४ प्रमाद ५ करने से

२ १ ३ ५ ४

(चौ०) जसु जग जाय होइ अपवादू

(अर्थ) १ जगत में २ यश ३ जावेगा (और) ४ निन्दा ५ होगी

अवतरण—इन चौपाइयों में हमारे लक्ष्य (१) नरनाहू, (२) दाहू (३), प्रमादू, (४) जसु और (५) अपवादू हैं । इनके रूप प्राकृत हिन्दी में ऐसे हैं (१) नरनाह, (२) दाह, (३) प्रमाद, (४) जस, (५) अपवाद । सो हम देखते हैं कि कवि ने इन शब्दों

के अन्त में किसी में तो 'उ' और किसी में 'ऊ' जोड़ दिया है। उनके ऐसा करने का कोई विशेष कारण नहीं जान पड़ता। केवल कवि की इच्छा ही इस का कारण ठहरती है। फिर यह नहीं कि येही शब्द ऐसे हैं, बरन् मानस के दोहे चौपाई आदि में से बिरला ही कोई ऐसा निकलेगा कि जिसमें कोई न कोई पद इस प्रकार का न हो। सो हम नियम ठहराते हैं कि:—

(३८) मानस में बहुत से पद ऐसे हैं जिनके अन्त में कवि ने अपनी इच्छा से कहीं 'उ' कहीं 'ऊ' जोड़ दिया है।

यथा—रामू, लखनु, सियनाहू, रिपुदमनू, फलु, जसु, जिअनु, मरनु, जगु, व्यवहारू, सारू, आदि।

इति विश्वेश्वरदत्तविरचिते मानसप्रबोधव्याकरणे स्वरविकारनिरूपणो नाम प्रथमोऽध्यायः।

दूसरा अध्याय

(व्यंजन-विकार-निरूपण)

प्रथम-असंयुक्त व्यंजन-विकार

निरूपण—

३ २ १ ४ ५

(चौ०) करि छल सुअर शरीर बचावा

(अर्थ) १ सुअर ने २ छल ३ करके ४ शरीर ५ बचाया।

२ ३ ४ १

(चौ०) चारि पदारथ भरा भँडारू

(अर्थ) १ भंडार में २ चार ३ पदार्थ ४ भरे हैं।

३ २ १ ४

(चौ०) लोयन लाहु हमहिं विधि दीन्हा

(अर्थ) १ परमेश्वर ने २ हमको ३ आँखों का लाभ ४ दिया।

१ ३ ४ २

(चौ०) करियत उलटि परै सुर राया

(अर्थ) यदि १ की जाय (तो) २ हे देवराज ३ उलट कर (अपने पर) ४ पड़ती है।

२ १

(चौ०) सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा

(अर्थ) १ ब्रह्म के विचार का प्रचार २ सरस्वती (नदी) है।

३ २ १

(सो०) करौ कृपा मर्दनमयन

(अर्थ) १ हे मदन-मर्दन (शिव) २ कृपा ३ करो।

(सो०) होइहहु[2] अवध भुआल[1]

(अर्थ) १ अयोध्या के राजा २ होवोगे।

अवतरण—ऊपर दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य ये हैं—

(१) सुअर, (२) भँडारू, (३) लोयन, (४) सुरराया, (५) सरसइ, (६) मयन और (७) भुआल। अब देखिए—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
शूकर	सुअर	सरस्वती	सरसइ
भाण्डागार	भंडार	मदन	मयन
लोचन	लोयन	भूपाल	भुआल
सुरराज	सुरराय		

इन शब्दों पर विचारपूर्वक देखने से जाना जाता है कि पहिले में 'क्' दूसरे में 'ग्', तीसरे में 'च्', चौथे में 'ज्', पाँचवें में 'त्', छठवें में 'द्', और सातवें में 'प्' के लोप कर देने से प्राकृत हिन्दी के शब्द बन गये हैं। इससे यह नियम निकलता है कि:—

(३९) क, ग, च, ज, त, द, वा, प अक्षर यदि संस्कृत शब्द के आदि में न हो तो कभी कभी उसके लोप कर देने से प्राकृत हिन्दी का शब्द बन जाता है। यथा—

('क' लोप)

संस्कृत	तद्भव
(१) शुक,	(१) सुआ,
(२) सूपकार,	(२) सुआर,
(३) द्यूतकारी,	(३) जुआरी,

संस्कृत	तद्भव
(४) स्वर्णकार,	(४) सुनार,
(५) चर्मकार,	(५) चमार ।

('ग' लोप)

संस्कृत	तद्भव
(१) मृगांक,	(१) मयंक,
(२) शयनागार,	(२) सोवनार,
(३) जेमनागार ।	(३) जेवनार ।

('च' लोप)

संस्कृत 'वचन' से प्राकृत हिन्दी में 'बयन' वा 'बैन' । 'सूची' से सुई ।

('ज' लोप)

सं० 'गजेन्द्र' से प्रा० 'गयन्द' । सं० 'भुजंग' से प्रा० 'भुअंग' वा 'भुवंग' ।

('त' लोप)

संस्कृत	तद्भव
(१) शत,	(१) सय* वा सै,

*यद्यपि आज कल संस्कृत 'शत' शब्द के बदले 'सय' शब्द बहुत कम बोला वा लिखा जाता है । उसके स्थान में 'सै' अथवा 'सौ' प्रचलित है । तथापि परिवर्त्तन क्रम में 'सय' पहिला परिवर्त्तन है । इसी से वह मूल में

संस्कृत	तद्भव
(२) सीता,	(२) सीया, सिया,
(३) मृत,	(३) मुआ,
(४) कृत,	(४) किया,
(५) गत,	(५) गया,
(६) पीत,	(६) पियर,
(७) शीतल ।	(७) सिअर वा सियर ।

प्रथम लिखा गया है । कालान्तर में यही 'सय' शब्द दो रूपों में परिवर्त्तित हो गया । 'सय' का पहिला परिवर्त्तन समान सुनाई देने के कारण 'सै' हुआ फिर दूसरा परिवर्त्तन 'सौ' हुआ और वह इस प्रकार से हुआ । यथाः—

जब संस्कृत 'शत' शब्द के 'त' का लोप ३९ वें नियम के अनुसार हो गया और 'श', 'स' से बदल गया, तब रूप हुआ 'स अ' फिर उच्चारण की सुगमता के लिए २१ वें पृष्ठ में बतलाये हुए ३९ वें नियम के विवरण के अनुसार 'य' आ जाने से रूप हुआ 'सय' फिर शब्द के अन्त में 'य' सुनाई देने के कारण ३०वें नियम के अनुसार उसका परिवर्त्तन 'व' अथवा 'उ' से हो गया । तब रूप हुआ 'सव' अथवा 'सउ' फिर समान सुनाई देने के कारण 'सव' अथवा 'सउ' के स्थान में 'सौ' बोला जाने लगा । आज कल यही रूप अधिक प्रचलित है । तात्पर्य यह कि सय, सै, सव, सउ, और सौ ये सब हमारे संस्कृत 'शत' शब्द के सन्तान हैं । इनमें से कोई पहिली पीढ़ी का है कोई दूसरी तीसरी आदि पीढ़ी का है ।

('द' लोप)

संस्कृत	तद्भव
(१) हृद्,	(१) हिय,
(२) पाद,	(२) पायँ वा पावँ,
(३) भेद,	(३) भेव,
(४) आदेश।	(४) आएस वा आयस।

('प' लोप)

संस्कृत	तद्भव
(१) कूप,	(१) कुआ,
(२) पूप,	(२) पुआ,
(३) निपुण,	(३) निउन,
(४) गोपन,	(४) गोअना,
(५) नापित,	(५) नाई,
(६) दीप।	(६) दिया।

विवरण—इनमें से च, ज, का लोप छान्दिक है, अर्थात् ऐसे प्रयोग प्रायः छन्द में पाये जाते हैं। 'ग' का लोप बहुधा 'आगार' शब्द में तब होता है जब 'आगार' किसी दूसरे शब्द से जुड़ कर उस शब्द के अन्त में होता है, जैसे भाण्ड+आगार=भंडार, आदि में।

क, त, द, प इनका लोप प्राकृत है। इनमें से 'क' का लोप अधिकांश ऐसे शब्दों में पाया जाता है जिनके अन्त में 'कार' जुड़ता है, जैसे 'कुंभकार' से कुम्हार, आदि में।

यदि लोप हुआ वर्ण, पद के अन्त का हो तो उच्चारण की सुगमता के लिए कभी कभी कहीं 'य' और कहीं 'व' हो जाता है। परन्तु 'प' का लोप जब मध्य में होता है तब बहुधा उसके स्थान में 'व' होता है। चाहे इस बात को ऐसे कहें कि 'प' के स्थान में 'व' होता है। जैसे 'कपर्दी' शब्द के 'प' का लोप हुआ तब 'व' उसके स्थान में हो गया। फिर 'र्द' का 'ड़' हो गया। (यह कैसे होता है इस बात को हम 'संयुक्त व्यंजन के विकार' के प्रकरण में बतावेंगे) तब (कवड़ी) ऐसा हुआ, फिर 'व' चौंतीसवें नियम के अनुसार अपने से पूर्व स्वर सहित 'औ' बन गया। इस प्रकार 'कौड़ी' रूप हो गया । ऐसे ही 'सपत्नी' से पहिले 'सवति' हुआ। फिर 'सवति' से कभी कभी 'सौत' रूप बन जाता है। इसी प्रकार और भी जानना चाहिए।

(चौ०) जो[१] हसि[२] सो[३] हसि[४] मुँह[५] मसि[६] लाई[७]।

(अर्थ) १ जो २ है ३ सो ४ है ५ मुँह में ६ करिखा ७ लगाकर।

(चौ०) भीर[१] प्रतीति[२] प्रीति[३] करि[५] हाती[४]।

(अर्थ) १ हे डरपोक २ प्रतीति (और) ३ प्रीति का ४ घात ५ करके।

२ १ ४ ३

(चौ०) सेवक हम स्वामी सियनाहू ।

(अर्थ) १ हम (तो) २ सेवक हों (और) ३ सीतानाथ ४ स्वामी हों ।

१ २ ४ ३

(चौ०) उभय अपार उदधि अवगाहा ।

(अर्थ) १ दोनों २ अपार (और) ३ अगाध ४ समुद्र हैं ।

२ १ ३

(दो०) मुकताहल गुनगन चुनइ ।

(अर्थ) १ गुनगन रूपी २ मुक्ताफल (मोती) को ३ चुनती है ।

४ १ २ ३

(चौ०) लहत सुयश अपलोक विभूती ।

(अर्थ) १ सुन्दर यश (और) २ निन्दा रूपी ३ विभूति को ४ पाते हैं ।

२ ३ ४ १

(चौ०) सांचेहु मैं लवार भुजबीहा ।

(अर्थ) १ हे बीस भुजवाले (रावन) २ सचमुच ३ मैं ४ झूठा (बातूनी) हूँ ।

१ ४ २ ३

(चौ०) पाहन ते न काठ कठिनाई ।

(अर्थ) १ पत्थर से २ काठ की ३ कठोरता (अधिक) ४ नहीं होती ।

४ २ ३ १

(दो०) कहौं सो मति अनुहारि अब ।

(अर्थ) १ अब २ वह ३ मति के अनुसार ४ कहता हूँ ।

(चौ०) एक[1] कहहिं[2] यह[3] बात[4] अलीहा[5] ।

(अर्थ) १ कोई कोई २ कहते हैं (कि) ३ यह ४ बात ५ झूठ है ।

(चौ०) बल[1] बिलोकि[2] बिहरति[5] नहिं[4] छाती[3]

(अर्थ) १ बल २ देख कर ३ छाती ४ नहीं ५ विदरती (फटती) ।

अवतरण—ऊपर दिये हुए प्रमाणों में ये पद हमारे लक्ष्य हैं:—

(१) मुहँ, (२) हाती, (३) सियनाहू, (४) अवगाहा, (५) मुकताहल, (६) लहत, (७) भुजबीहा, (८) पाहन, (९) अनुहारि, (१०) अलीहा, (११) बिहरति । इनके संस्कृत रूप ये हैं ।

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
मुख	मुँह	विंश	बीह
घाती	हाती	पाषाण	पाहन
सीतानाथ	सियनाह	अनुसार	अनुहार
अवगाध	अवगाह	अलीक	अलीह
मुक्ताफल	मुकताहल	वि + दृ = विदर	विहर
लभत	लहत		

इनमें हम देखते हैं कि क्रम से ख, घ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, क, और द के बदले 'ह' हो गया है । सो नियम होता है कि—

(४०) कुछ संस्कृत शब्दों के प्रायः दो स्वरों के बीच के (ख,

घ, थ, ध, फ, भ, श, ष, स, क, द) अक्षर प्राकृत हिन्दी में 'ह' से बदल जाते हैं। यथाः—

(ख का ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) नख	(१) (नाखून) नह वा नहा (नुहँ)
(२) आखेट	(२) अहेर
(३) लाक्षा	(३) लाख से लाह
(४) शाखा	(४) साह (खेत के पौधे के विषय में बोलते हैं।)

(घ का ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) पितृगृह,	(१) पितृ घर से पीहर,
(२) काष्ठगृह,	(२) कठघरा से कठहरा,
(३) खंडगृह,	(३) खंडघर से खँडहर,
(४) माघ,	(४) माह,
(५) अरघट्ट।	(५) रहट।

(थ का ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) मंथन,	(१) महना,
(२) कथन,	(२) कहना,

संस्कृत	तद्भव
(३) यूथ,	(३) जूह,
(४) यूथिका ।	(४) जूही (फूल) ।

(ध का ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) साधुकार,	(१) साहूकार,
(२) मगध,	(२) मगह,
(३) गोधूम,	(३) गोहूँ,
(४) तैलधान्य,	(४) तेलहन, (तिलहन),
(५) गोधा,	(५) गोह,
(६) बधिर,	(६) बहिर,
(७) अवधार	(७) ओहार,
(८) मधूक ।	(८) महुआ ।

(फ का ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) गुम्फन,	(१) गुहना,
(२) कण्टकिफल,	(२) कटहल (र),
(३) मुक्ताफल ।	(३) मुक्ताहल ।

(भ का ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) अभीर,	(१) अहीर,

संस्कृत	तद्भव
(२) शोभन,	(२) सोहना,
(३) सौभाग्य,	(३) सोहाग सुहाग,
(४) भांड,	(४) हंडा,
(५) क्षोभ,	(५) छोह,
(६) लभन ।	(६) लहना ।

(श ष स का क्रम से ह)

संस्कृत	तद्भव
(१) दश,	(१) दह
(२) केशरी,	(२) केहरी
(१) पौष,	(१) पोह,
(१) मास,	(१) माह,

(२) सप्तति । (२) सत्तर फिर सत्तर से हत्तर यथा एकहत्तर, बहत्तर, तिहत्तर आदि ।

'क' और 'द' का 'ह' होना साधारण नहीं है । जो मानस के उदाहरण दिये गये हैं वे ही बहुत हैं ।

नियम में 'प्राय:' कहने से यह तात्पर्य है कि कभी कभी नियम विरुद्ध भी होता है, जैसे 'घाती' से 'हाती' फिर 'मन्थन' से 'महना' आदि में। 'हाती' और 'महना' इन दो उदाहरणों में दो स्वरों के बीच में न होने पर भी 'ह' हो गया है ।

(चौ०) खेलत[१] रहा तासु[२] भइ[४] भेंटा[३]

(अर्थ) १ खेलता था २ उसकी ३ भेंट ४ हुई ।

(चौ०) होहिं[५] निरामिष[४] कबहुँ[३] कि[१] कागा[२]

(अर्थ) १ क्या २ कौवे ३ कभी ४ निर्मांसभोजी ५ होते हैं ?

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'खेल' और 'कागा' शब्द हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से (१) केलि और (२) काक हैं । यहाँ हम देखते हैं कि एक स्थान में 'क' को 'ख' हो गया है और दूसरे में 'ग' हुआ है । भेद यह है कि 'ख' तो शब्द के आदि के 'क' को हुआ है, परन्तु 'ग' दो स्वरों के बीच के 'क' को हुआ है । सो नियम हुआ कि:—

(४१) संस्कृत के कुछ शब्दों के आदि के (क) का तो 'ख' और दो स्वरों के बीच के 'क' का 'ग' हो जाता है ।

('क' को 'ख)

संस्कृत	तद्भव
(१) कलत्र,	(१) खटला
(२) कोशन,	(२) खोंसना,
(३) कुच,	(३) खोंचा,
(४) कृसर,	(४) खिचरी,
(५) कौशिक,	(५) खूसट,
(६) काश,	(६) खाँसी,

(७) वि + किरण = विकिरण,　　　(७) बिखिरना,

(८) कुब्ज ।　　　　　　　　　(८) खुज्जा (मिस्त्री का)

('क' को 'ग')

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
कंकण............	कंगन	सकल..............	सगल
शाक...............	साग	बक	बग (बगुला)
लोक	लोग	विकार...............	बिगाड़
शोक...............	सोग	शुक..................	सुग्गा
मकर...............	मगर	पाक	पाग

इत्यादि और भी जानना ।

(चौ०) सिविका सुभग ओहार[१] उघारी[२]

(अर्थ) १ पालकी का सुन्दर ओहार २ उघार कर ।

(चौ०) जड़ित[२] कनक[१] मनि पलंग[३] डसाए[४]

(अर्थ) १ सोना और मणि से २ जड़ा हुआ ३ पलंग ४ बिछाया ।

अवतरण—ऊपर की चौपाइयों में हमारे लक्ष्य 'उघारी' और 'जड़ित' हैं। इनके संस्कृत रूप क्रम से 'उद्घाटन' और 'जटित' हैं।

यहाँ हम देखते हैं कि 'ट' का एक स्थान में 'र' हो गया है और दूसरे स्थान में 'ड़' हुआ है । सो नियम हुआ कि

(४२) संस्कृत के कुछ शब्दों में दो स्वरों के बीच का 'ट' प्राकृत हिन्दी में कभी 'र' और कभी 'ड़' हो जाता है । यथा

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
घटी.........	घरी वा घड़ी	जूट............	जूरा वा जूड़ा
शाटी......	सारी वा साड़ी	सुघट.........	सुघर वा सुघड़
वट............	बर वा बड़	पर्पट.........	पापर वा पापड़
शृंगाटक...	सिंघारा वा सिंघाड़ा	कटु............	करू वा कड़ू

विवरण—ऐसे बदलाव का कारण स्थान की समता और उच्चारण में मृदुता ही जान पड़ती है । अनुमान है कि 'ट' का प्रथम विकार अधिक शब्दों में 'र' हुआ हो और पीछे 'र' से 'ड़' बना हो, क्योंकि गँवई गाँव में अधिक करके 'र' बोलते हैं । जैसे 'घरी' 'बरा' 'सिंघारा' आदि में ।

(चौ०) पढ़हिं[४] वेद[३] मुनि[१] मंगल[२] वानी

(अर्थ) १ मुनि लोग २ मंगलवाणी से ३ वेद ४ पढ़ते हैं ।

अवतरण—ऊपर की चौपाई में हमारा लक्ष्य 'पढ़हिं' है ।

इसका संस्कृत रूप 'पठ' धातु है । इसमें हम देखते हैं कि 'ठ' को 'ढ़' हो गया है । सो नियम हुआ कि:—

(४३) संस्कृत शब्द के दो स्वरों के बीच के 'ठ' का प्राकृत हिन्दी में कभी कभी 'ढ़' हो जाता है । यथाः—

संस्कृत	तद्भव
(१) पीठ	(१) पीढ़ा
(२) मठी	(२) मढ़ी
(३) पाठीन (मछली)	(३) पढ़िना
(४) लुठन	(४) लुढ़कना

(चौ०) वर[१] मांगत[२] मन[३] भई[६] न[५] पीरा[४]

(अर्थ) १ वरदान २ माँगते समय ३ मन में ४ पीड़ा ५ नहीं ६ हुई।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'पीरा' है । इसका संस्कृत रूप 'पीडा' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'ड' के स्थान में 'र' हो गया है । सो नियम होता है कि:—

(४४) 'पीडा' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के बीच में 'ड' का 'र' हो जाता है । यथाः—

संस्कृत	तद्भव
(१) क्रोड (गोद)	(१) कोरा (गोद)
(२) नाडी	(२) नारी
(३) गुड	(३) गुर

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) जिमि अंकुश धनु उरग बिलाई

(अर्थ) १ जैसे २ आँकुस ३ धनुष ४ साँप (और) ५ बिलाई ।

अवतरण—इस चौपाई में 'बिलाई' पद हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'बिडाली' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'ड' का 'ल' हुआ है, और दूसरा विकार यह है कि 'ली' का 'ल' लोप हुआ है । 'ल' के लोप की चर्चा 'ल' अक्षर के प्रसंग में की जावेगी, यहाँ 'ड' का प्रकरण है । सो नियम हुआ कि:—

(४५) 'बिडाल' आदि कुछ संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के बीच का 'ड' प्राकृत हिन्दी में 'ल' हो जाता है । यथा:—

संस्कृत	तद्भव
(१) गरुड ।	(१) गरुल वा गड़ुल ।

प्राकृत हिन्दी में संस्कृत 'आढकी' शब्द से अरहर बनता है ।

---

२ १ ३
(सो०) कारन मोहि सुनाउ

(अर्थ) १ मुझे २ कारण ३ सुना ।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) अरुन नयन उर बाहु बिशाला

(अर्थ) १ लाल २ आँखें, ३ छाती (और) ४ बाँह ५ बड़ी ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'कारन' और 'अरुन' शब्द हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से 'कारण' और 'अरुण'

हैं । यहाँ हम देखते हैं कि 'ण' को 'न' करके पढ़ा गया है । सो नियम होता है कि:—

(४६) 'कारण' आदि शब्दों के दो स्वरों के बीच का 'ण' प्राकृत हिन्दी में 'न' हो जाता है । यथा:—

संस्कृत	तद्भव
(१) गुण,	(१) गुन,
(२) शरण,	(२) सरन,
(३) तरुण,	(३) तरुन,
(४) हरण,	(४) हरना,
(५) पाषाण,	(५) पखान,
(६) रण,	(६) रन,
(७) गण ।	(७) गन ।

इत्यादि और भी बहुत से हैं ।

---

(४७) संस्कृत के बहुत थोड़े शब्द हैं जिनके 'त' का प्राकृत हिन्दी में 'ट' होता है । जैसे 'मृत्तिका' से मिट्टी, 'मट्टी' वा 'माटी' । फिर 'उत्तंग' से 'उटंग' अर्थात् ओछा वस्त्र । परन्तु इन दोनों प्रयोगों में हम देखते हैं कि संस्कृत शब्द में दो 'त' हैं, अर्थात् 'त्त' है ।

(सो०) पकट[१] खटाई[२] परत[३] ही

(अर्थ) १ कपट रूप २ खटाई ३ पड़ते ही—

अवतरण—इस ऊपर के सोरठे में हमारा लक्ष्य 'परत' पद है

जो 'पड़ना' क्रिया से बनता है, और जिसका संस्कृत रूप 'पतन' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'पतन' शब्द के 'त' का 'र' कर दिया गया है। मानस में जहाँ कहीं यह क्रिया काम में आई है वहाँ इसी रूप से आई है, अर्थात् 'त' के बदले 'र' कर दिया गया है, तो भी प्राकृत हिन्दी में इसके दो रूप काम में आते हैं—(१) परना, (२) पड़ना। सो नियम होता है कि:—

(४८) 'पतन' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के बीच का 'त' प्राकृत हिन्दी में कभी तो 'र' और कभी 'ड़' बन जाता है। यथा:—

संस्कृत		तद्भव
(१) प्रतिपदा	... ...	(१) परीवा वा पड़ीवा
(२) प्रतिवासी	... ...	(२) परोसी वा पड़ोसी
(३) प्रतिछाया	... ...	(३) परिछाईं
(४) अतसी	... ...	(४) अरसी, अड़सी वा अलसी

विवरण—'प्रतिपदा' से 'परीवा' वा 'पड़ीवा' ऐसे बने कि 'प्र' को तो 'प' हो गया, जैसा कि हम आगे बतलायेंगे। फिर 'ति' को 'री' वा 'ड़ी' इसी नियम से हुआ है। और 'पदा' को 'वा' ऐसे हुआ कि 'प' और 'द' का लोप हुआ, जैसा कि हम ३९वें नियम में बतला चुके हैं। फिर 'प' के लोप स्थान में 'व' आगया, यह भी हम बतला चुके हैं (देखो ३९ वें नियम का विवरण पृ० ५१)। इस प्रकार 'प्रतिपदा' से 'परीवा' वा 'पड़ीवा' रूप होते हैं। ऐसे ही अन्यत्र भी जान लेना चाहिए। 'अलसी' में जो 'ल' हुआ है सो 'र' के बदले हुआ है, यह आगे कहा जायगा।

(दो०) जनु[1] विधु[2] मण्डल डोल[3]

(अर्थ) १ मानो २ चन्द्रमण्डलरूपी ३ हिंडोले में

अवतरण—इस दोहे में 'डोल' पद हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'दोल' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'दोल' शब्द का 'द' 'ड' करके पढ़ा गया है। सो हम जानते हैं कि:—

(४९) 'दोल' आदि कुछ संस्कृत शब्दों के 'द' का प्राकृत हिन्दी में 'ड' हो जाता है। जैसे:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
दण्ड......	डण्डा वा डाँड	दृष्टि...........	डीठि (दीठ)
दंशन...........	डँसना	दोरक................	डोरा
दाह	डाह	दंष्ट्रा................	डाढ़
देहली...........	डेहरी		

(चौ०) घालेसि[5] सब[1] जग[2] बारह[3] बाटा[4]

(अर्थ०) १ सब २ जगत को ३ बारह ४ रास्ते से ५ बहादिया।

अवतरण—इस ऊपर की चौपाई में हमारा लक्ष्य 'बारह' पद है। इसका संस्कृत रूप 'द्वादश' है। यह बात हम दिखा चुके हैं कि 'दश' का 'दह' हो जाता है (देखो नियम ४० वाँ और उसके उदाहरण पृष्ठ ५६ में)। फिर 'द्वा' में से 'द' का लोप कर देने से 'वा' रह जाता है। 'व' का उच्चारण प्राकृत हिन्दी में 'ब' अनेक स्थानों में होता है। यह भी हमने ३५वें नियम में बतलाया है। सो 'वा' का 'बा' उस नियम के अनुसार हुआ तब 'बादह' रूप हुआ। अब हम यहाँ देखते हैं कि 'द' का 'र' कर दिया गया है। सो नियम हो गया कि:—

(५०) संस्कृत 'दश' शब्द के 'द' का और कभी कभी दूसरे शब्दों के 'द' का भी प्राकृत हिन्दी में प्रायः 'र' होता है। यथाः—

संस्कृत			तद्भव
(१) एकादश	...	...	(१) ग्यारह
(२) द्वादश	...	...	(२) बारह
(३) त्रयोदश	...	...	(३) तेरह
(४) पंचदश	...	...	(४) पंद्रह
(५) षोडश	...	...	(५) सोरह
(६) सप्तदश	...	...	(६) सत्रह
(७) अष्टादश	...	...	(७) अठारह

विवरण—नियम में 'प्रायः' कहने से यह प्रयोजन है कि 'दस' और 'चौदह' में नहीं हुआ। 'एकादश' से 'ग्यारह' ऐसे बना कि 'दह' का तो 'रह' ऊपर दिये नियम के अनुसार हुआ। और 'एका' का 'एगा' भी पूर्वोक्त ४१ वें नियम के अनुसार 'क' का 'ग' कर देने से हुआ। इस प्रकार पहले 'एगारह' हुआ और फिर कालान्तर में उच्चारण की विलक्षणता से 'एगा' का 'ग्या' बन गया। इसी प्रकार 'तेरह' में 'त्रय' शब्द के 'त्र' को 'त' आगे कहे जानेवाले नियम से और 'य' का 'ए' ३८ वें पृष्ठ में बतलाये हुए विवरण के अनुसार हुआ, फिर दोनों के मिल जाने से 'ते' हुआ, जैसा कि हम 'तेइस' आदि में भी देखते हैं। सो नियम होता है किः—

(५१) संस्कृत के 'त्रय' को प्राकृत हिन्दी में 'ते' और 'त्रि' को कहीं 'तिर' और कहीं 'ति' हो जाता है। यथाः—

संस्कृत		तद्भव
(१) त्रयोदश	... ...	(१) तेरह
(२) त्रयोविंश	... ...	(२) तेइस
(३) त्रयस्त्रिंश	... ...	(३) तेंतीस
(४) त्रयश्चत्वारिंश	... ...	(४) तेंतालिस
(५) त्रिपंचाशत्	... ...	(५) तिर्पन
(६) त्रिषष्ठि	... ...	(६) तिर्सठ

ऐसे ही—'तिहत्तर' 'तिरासी' और 'तिरानवे' को जानो।

(चौ०) बोलेउ[४] उमा[१] सहित[३] अनुरागा[२]

(अर्थ०) १ हे पार्वती २ प्रेम के ३ सहित ४ बोला—

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य पद 'बोलेउ' है। यह 'बोल' धातु का भूतकालिक रूप है। 'बोल' धातु संस्कृत 'वद' धातु का तद्भव है। हमने बतलाया है कि 'व' कभी कभी हिन्दी में 'ब' हो जाता है। फिर हमने सातवें नियम में बतलाया है कि कभी कभी 'अ' 'ओ' हो जाता है। इस रीति से 'वद' का 'व' 'बो' बन गया। फिर हम देखते हैं कि 'वद' का 'द' यहाँ 'ल' हो गया है। सो नियम होता है कि:—

(५२) कुछेक संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के बीच का 'द' प्राकृत हिन्दी में 'ल' हो जाता है। यथा:—

संस्कृत	तद्भव
(१) प्रदीप्त	(१) पलीता

(२) गद्गद (२) गलगल (प्रेम वा आनन्द से गलगल होना)
(३) षोडश (३) सोलह

विवरण—'सोलह' में चाहे 'ड' का 'ल' हुआ मान लिया जाय चाहे उसके मूल दश के 'द' का 'ल' होना मान लिया जाय, बात एक ही है । 'गद्गद' से एक शब्द प्राकृत हिन्दी में और बनता है, वह शब्द 'गगरा' वा 'गगरी' है । यहाँ एक 'द' का लोप होकर दूसरे का 'र' हो गया है, जैसा कि ऊपर पचासवें नियम में 'द' का 'र' होना बतलाया गया है । हमारा अनुमान है कि घड़े में जब पानी भरते वा उँडेलते हैं तब 'गदगद' ऐसा शब्द होता हुआ सा जान पड़ता है । इसी लिए बड़े पात्र को 'गगरा' और छोटे को 'गगरी' कहा गया होगा । पहले इनके रूप 'गद्गदा' और 'गद्गदी' रहे होंगे ।

(चौ०) फरसा[१] बाँस[२] सेल[३] सम[४] करहीं[५]

(अर्थ०) १ कुल्हाड़ी, २ बाँस को ३ भाला के ४ समान ५ करते हैं ।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'फरसा' शब्द है । इस का संस्कृत रूप 'परशु' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'प' को 'फ' करके पढ़ा गया है । इससे जाना जाता है कि:—

(५३) परशु आदि कुछेक संस्कृत शब्दों का 'प' प्राकृत हिन्दी में 'फ' हो जाता है । यथा:—

संस्कृत		तद्भव
(१) पारसी	... ...	(१) फारसी
(२) पाश	... ...	(२) फाँसी
(३) पतङ्ग	... ...	(३) फतङ्गा वा फनगा
(४) प्रपंच	... ...	(४) फरफन्द

(चौ०) गाँव[3] निकट[4] जब[1] निकसहिं[5] जाई[2]

(अर्थ०) १ जब २ जाकर ३ गाँव के ४ निकट ५ निकलते हैं ।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'गाँव' शब्द है। इसका संस्कृत रूप 'ग्राम' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'म' के स्थान में 'व' कर के पढ़ा गया है और उसके पूर्व का स्वर सानुनासिक कर दिया गया है। सो नियम होता है कि:—

(५४) 'ग्राम' आदि कुछ संस्कृत शब्दों के दो स्वरों के बीच का 'म' प्राकृत हिन्दी में 'व' हो जाता है और उसके पूर्व का स्वर प्रायः सानुनासिक हो जाता है। यथा:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
नाम............	नाँव	नमन.........	नवना
श्यामल......	साँवल वा साँवर	दमन.........	दाँवना
आम (रोग)......	आँव (रोग)	कुमार.........	कुँवार, कुँवर
आमलक...	आँवला वा अँवरा	पामर.........	पाँवर
कमल............	कँवल	वाम............	बावाँ
जेमन............	जेंवना	चमर............	चँवर

विवरण—'प्रायः' इसलिए कहा गया कि 'गमन' से 'गवना' वा 'गौना' में पूर्व स्वर सानुनासिक नहीं हुआ। फिर 'वाम' से 'बावाँ' में पूर्व स्वर सानुनासिक न होकर उत्तर स्वर सानुनासिक हुआ है।

मानस में 'र' के स्थान में 'ड' होने का प्रयोग मिलना कठिन है, कदाचित् कहीं होवे तो होवे; परन्तु हम समझते हैं कि कहीं न मिलेगा। क्योंकि गोस्वामीजी प्रायः 'ड' को 'र' करके लिखते हैं; 'र' को 'ड' नहीं लिखते। तो भी प्राकृत हिंदी में कुछ शब्द पाये जाते हैं जिनमें 'र' को 'ड़' हुआ है। जैसे संस्कृत 'धर' को प्राकृत हिंदी में 'धड़' कहते हैं। 'गरुड़' को कहीं कहीं 'गड्डल' बोलते हैं। ऐसे ही 'र' को 'ल' होता है। यथा संस्कृत 'हरिद्रा' को प्राकृत हिन्दी में 'हरदी' वा हलदी बोलते हैं।

(चौ०) नाँघत[५] सरित[२] शैल[३] बन[४] बाँके[१]

(अर्थ) १ विकट २ नदियाँ ३ पहाड़ (और) ४ बन ५ लाँघते हुए।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'नाँघत' है। यह 'नाँघना' से बना है और 'नाँघना' का संस्कृत रूप 'लंघन' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'ल' के स्थान में 'न' कर दिया गया है। सो नियम होता है कि:—

(५५) 'लंघन' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों का 'ल' प्राकृत हिन्दी में 'न' हो जाता है। यथाः—

संस्कृत—(१) लवण (२) लुंचन

तद्भव— (१) लोन वा नोन (२) नोचना

(चौ०) गरि[3] न[2] जीह[1] मुँह[4] परे[7] न[6] कीरा[5]

(अर्थ) १ जीभ २ न ३ गलगई ४ मुँह में ५ कीड़े ६ न ७ पड़ गये।

अवतरण—इस चौपाई में 'गरि' शब्द हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'गल' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'ल' का 'र' कर दिया गया है। सो नियम होता है किः—

(५६) 'गल' आदि कुछ संस्कृत शब्दों का दो स्वरों के बीच का 'ल' प्राकृत हिन्दी में 'र' हो जाता है। यथाः—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
श्रृंखला	साँकर वा सँकरी	फल	फर
कपाल	कपार	ज्वलन	जरना
पुत्तली	पुतरी	मूल	मूर
तालु	तारू	तल	तर

इत्यादि, और भी अनेक हैं।

विवरण—कभी कभी 'ल' को 'ड़' भी होता है; यथा संस्कृत 'आलग्न' से प्राकृत हिन्दी में दो रूप होते हैं (१) अरगनी (२) अड़गनी। संस्कृत 'ताल' का तद्भव 'ताड़' वृक्ष है।

कभी कभी 'ल' का लोप भी देखा जाता है । यथा 'विडाली' से प्राकृत हिन्दी में 'बिलाई' वा 'बिलारी' होता है । 'बिलाई' में 'ल' का लोप हुआ है, और 'बिलारी' में 'ल' का 'र' हुआ है । ऐसे ही अन्यत्र भी जानना ।

(सो०) सदा छीर सागर सयन[१]

(अर्थ) १ हे सदा छीर सागर में शयन करने हारे—

अवतरण—इस सोरठे में 'सयन' शब्द हमारा लक्ष्य है । इसका संस्कृत रूप 'शयन' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'श' का 'स' कर दिया गया है । सो नियम हुआ कि:—

(५७) 'शयन' आदि संस्कृत शब्दों का 'श' प्राकृत हिन्दी में 'स' हो जाता है । यथा:—

संस्कृत		तद्भव
(१) गणेश	... ...	(१) गनेस
(२) शारदा	... ...	(२) सारदा
(३) शुभ	... ...	(३) सुभ
(४) शोभा	... ...	(४) सोभा
(५) श्याम	... ...	(५) स्याम
(६) किशोर	... ...	(६) किसोर
(७) शृङ्ग	... ...	(७) सींग

इत्यादि बहुत हैं ।

यद्यपि मानस में 'श' का 'छ' होने का उदाहरण नहीं मिलता तो भी हम प्राकृत हिन्दी में कुछ प्रयोग ऐसे पाते हैं कि जिनमें 'श' का 'छ' होना पाया जाता है। यथा, संस्कृत 'शकट' का तद्भव 'छकड़ा,' संस्कृत 'शिक्य' का तद्भव 'छीका'। सो जानना चाहिए कि किसी किसी संस्कृत शब्द के 'श' को 'छ' हो जाता है।

(चौ०) रहे[२] अशोच[१] बनै[५] प्रभु[३] पोसे[४]

(अर्थ) १ अशोच २ रहता है ३ प्रभु के ४ पोसने से ५ बनता है।

अवतरण—इस चौपाई में 'पोस' पद हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'पोष' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'ष' को 'स' करके पढ़ा गया है। सो नियम हुआ कि—

(५८) 'पोषण' आदि कुछ संस्कृत शब्द के 'ष' का प्राकृत हिन्दी में 'स' हो जाता है। यथा:—

संस्कृत		तद्भव
(१) मूषक	... ...	(१) मूस
(२) रोष	... ...	(२) रोस
(३) कोष	... ...	(३) कोस (खजाना)
(४) षोडश	... ...	(४) सोरह वा सोलह
(५) पौष	... ...	(५) पूस

            १   ४   २   ३

(चौ०) सोखेउ सुजस सकल संसारा

(अर्थ) १ सोख लिया २ सारे ३ संसार में ४ सुयश है ।

अवतरण—इस चौपाई में 'सोखेउ' हमारा लक्ष्य है । यह 'सोखना' क्रिया का भूतकालिक रूप है । सोखना का संस्कृत रूप 'शोषण' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'ष' के स्थान में 'ख' कर दिया गया है । सो नियम हुआ कि:—

(५-६) 'शोषण' आदि कुछ संस्कृत शब्दों का 'ष' प्राकृत हिन्दी में 'ख' बन जाता है । यथा:—

संस्कृत			तद्भव
(१) दोष	...	...	(१) दोख
(२) पुरुष	...	...	(२) पुरुख
(३) ऋषि	...	...	(३) रिखी
(४) संतोष	...	...	(४) सन्तोख
(५)भाषा	...	...	(५) भाखा
(६) पाषाण	...	...	(६) पखान

इत्यादि ।

———

            १   २   ४   ३

(चौ०) छरस रुचिर व्यंजन बहु भाँती

(अर्थ) १ छरस के २ रुचिकर ३ बहुत प्रकार के ४ व्यंजन ।

अवतरण—इस चौपाई में 'छरस' हमारा लक्ष्य है । इसका

संस्कृत रूप 'षड्रस' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'षट्' शब्द ही 'छ' हो गया है । सो नियम हुआ कि:—

(६०) संस्कृत का 'षट्' प्राकृत हिन्दी में 'छ' करके बोला जाता है । यथा:—

संस्कृत			तद्भव
(१) षड्विंश	...	...	(१) छब्बीस
(२) षट्त्रिंश	...	...	(२) छत्तीस
(३) षट्शास्त्र	...	...	(३) छ सास्तर

(संयुक्ताक्षरों के विषय में)

(चौ०) मति[१] कीरति[२] गति[३] भूति[४] भलाई[५]

(अर्थ) १ मति (बुद्धि) २ यश ३ गति ४ विभव ५ भलाई—

(दो०) जानि[३] सुभाउ[१] सनेहू[२]

(अर्थ) १ स्वाभाविक २ स्नेह ३ जानकर—

(चौ०) करमु[१] कथा रवि[२] नन्दिनि बरनी[३]

(अर्थ) १ कर्म की कथा २ जमुना करके ३ कही गई है ।

(चौ०) नहिं[३] कलि[१] करम[२] न[४] भगति[५] विवेकू

(अर्थ) १ कलियुग में २ कर्म ३ नहीं ४ न ५ भक्ति और ज्ञान है ।

(चौ०) मज्जन फल पेखिय ततकाला ([1] मज्जन फल, [3] पेखिय, [2] ततकाला)

(अर्थ) १ स्नान का फल २ उसी समय ३ देखा जाता है।

(सो०) जाहि दीन पर नेह ([1] जाहि, [2] दीन पर, [3] नेह)

(अर्थ) १ जिसको २ दीनों पर ३ स्नेह है।

(चौ०) श्री गुरु पद नख मनि गन जोती ([1] श्री गुरु पद नख मनि गन जोती)

(अर्थ) १ श्रीगुरु चरणों के नख रूप मणिगण की ज्योति को—

(चौ०) बड़े भाग उर आवइ जासू ([4] बड़े, [5] भाग, [2] उर, [3] आवइ, [1] जासू)

(अर्थ) १ जिसके २ हृदय में ३ आवे (उसके) ४ बड़े ५ भाग्य हैं।

(चौ०) सुनि आचरजु करै जनि कोई ([2] सुनि, [3] आचरजु, [5] करै, [4] जनि, [1] कोई)

(अर्थ) १ कोई २ सुनकर ३ आश्चर्य ४ न ५ करे।

(दो०) माँग माँग पै कहहु पिय ([2] माँग माँग, [3] पै कहहु, [1] पिय)

(अर्थ) १ हे प्यारे २ केवल माँग माँग ३ कहते हो।

अवतरण—ऊपर दिये प्रमाणों में हमारे लक्ष्य क्रम से ये हैं (१) कीरति, (२) सनेहु, (३) करमु, (४) भगति, (५) ततकाला, (६) नेह, (७) जोती, (८) भाग, (९) आचरजु, (१०) पिय। इनके संस्कृत रूप क्रम से नीचे दिये जाते हैं।

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
(१) कीर्ति.........	कीरति	(६) स्नेह	नेह
(२) स्नेह	सनेहु	(७) ज्योति.........	जोति (ती)
(३) कर्म	करमु	(८) भाग्य.........	भाग
(४) भक्ति.........	भगति	(९) आश्चर्य	आचरजु
(५) तत्काल	ततकाला	(१०) प्रिय.........	पिय

इन उदाहरणों में हमने दो विभाग किये हैं। एक में यह दिखाया गया है कि संस्कृत शब्दों के संयुक्ताक्षर प्राकृत हिन्दी में अलगा कर पढ़े गये हैं, जैसे कीर्ति से कीरति। फिर दूसरे विभाग में संस्कृत शब्दों के संयुक्ताक्षरों में से एक का लोप हो गया है, जैसे स्नेह से नेह आदि में। इससे यह नियम होता है कि:—

(६१) संस्कृत शब्दों का संयुक्ताक्षर प्राकृत हिन्दी में बहुधा या तो अलगा कर बोला वा लिखा जाता है, या उनमें से एक रह जाता है, शेष का लोप होता है। यथा:—

अलग होने के उदाहरण

संस्कृत			तद्भव
(१) धर्म	...	...	(१) धरम
(२) मर्म	...	...	(२) मरम
(३) श्रद्धा	...	...	(३) सरधा
(४) क्लेश	...	...	(४) कलेस
(५) विघ्न	...	...	(५) विघन

संस्कृत			तद्भव
(६) मग्न	...	...	(६) मगन
(७) पद्म	...	...	(७) पदुम

लोप होने के उदाहरण

संस्कृत			तद्भव
(१) दुग्ध	...	...	(१) दूध
(२) शुद्ध	...	...	(२) सूध
(३) स्थान	...	...	(३) थान
(४) तप्त	...	...	(४) तात
(५) सप्त	...	...	(५) सात
(६) पर्ण	...	...	(६) पान
(७) रिक्त	...	...	(७) रीता

(चौ०) मूठि[2] कुबुद्धि[1] धार[4] निठुराई[3]

(अर्थ) १ कुबुद्धि २ मूठ है (और) ३ निष्ठुरता ४ धार है ।

अवतरण—ऊपर की चौपाई में हमारे लक्ष्य 'मूठि' और 'निठुराई' हैं । इनके संस्कृत रूप क्रम से 'मुष्टि' और 'निष्ठुरता' हैं । यहाँ हम देखते हैं कि एक स्थान में 'ष्ट' को 'ठ' कर दिया गया है और दूसरे स्थान में 'ष्ठ' का 'ठ' हो गया है । इससे यह नियम निकलता है कि:—

(६२) संस्कृत शब्दों में जहाँ कहीं 'ष्ट' वा 'ष्ठ' होवें वहाँ प्राकृत हिन्दी में प्राय: 'ठ' हो जाता है।

'ष्ट' का 'ठ'

संस्कृत			तद्भव
(१) दृष्टि	...	...	(१) दीठि
(२) रुष्ट	...	...	(२) रूठ
(३) मिष्ट	...	...	(३) मीठ
(४) धृष्ट	...	...	(४) ढीठ
(५) सुष्ठु	...	...	(५) सुठ

'ष्ठ' का 'ठ'

संस्कृत			तद्भव
(१) पृष्ठ	...	...	(१) पीठ
(२) कोष्ठ	...	...	(२) कोठा
(३) गोष्ठी	...	...	(३) गोठ
(४) ओष्ठ	...	...	(४) ओठ
(५) श्रेष्ठ	...	...	(५) सेठ

विवरण—'ष्ठ' का 'ठ' होना चाहे इस नियम से मानो और चाहे ६१ वें नियम से एक वर्ण का लोप मान लो।

नियम में, प्राय: कहने का कारण यह है कि 'सृष्टि' 'वृष्टि' 'दुष्ट' 'प्रतिष्ठा' 'वशिष्ठ' आदि में 'ठ' नहीं होता। 'इष्टिका' से 'ईंट' तीसरे नियम से सिद्ध होता है। कहीं कहीं 'ष्ट' का 'ढ़' होता हुआ

देखा जाता है; जैसे 'कुष्ट' से 'कोढ़', 'लोष्ट' से 'लोढ़ा', 'दंष्ट्रा' से 'डाढ़', 'इष्ट' से 'ईढ़' इत्यादि में।

(चौ०) जहँ[1] बस[4] श्री निवास[2] श्रुतिमाथा[3]

(अर्थ) १ जहाँ २ श्री के निवास-स्थान ३ वेदों के सिर ४ बसते हैं।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'माथा' है। इसका संस्कृत रूप 'मस्तक' है। यहाँ हम देखते हैं कि मस्तक शब्द का 'स्त' अक्षर 'थ' कर दिया गया है। सो नियम हुआ कि:—

(६३) 'मस्तक' आदि कुछ संस्कृत शब्दों का 'स्त' अक्षर प्राकृत हिन्दी में प्रायः 'थ' हो जाता है, यथा:—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
पुस्तक	पोथा वा पोथी	स्वस्तिका	सथिया
निस्तरण	निथरना		
मुस्ता	मोथा	स्तन............	थन
विस्तरण.........	विथरना		
प्रस्तर...........	पाथर	वास्तूक.........	बथुआ (साग)
हस्त............	हाथ	हस्ती	हाथी

विवरण—'दुस्तर' 'निस्तार' 'विस्तर' 'विस्तार' आदि में ऐसा नहीं होता इसी लिये नियम में 'प्रायः' कहा गया है।

(चौ०) सुर[3] प्रतिमा खंभन्हि[1] गढ़ि[2] काढ़ी[4]

(अर्थ०) १ खंभों में १ गढ़कर ३ देवताओं की प्रतिमा ४ काढ़ी हैं।

अवतरण—ऊपर की चौपाई में हमारे दो पद लक्ष्य हैं—'खंभन्हि' और 'काढ़ी' । इन के संस्कृत रूप क्रम से 'स्कंभ' और 'कर्षण' हैं यहाँ हम देखते हैं कि 'स्क' को तो 'ख' हो गया है और 'र्ष' का 'ढ़' बन गया है; सो नियम होता है कि:—

(६४) संस्कृत के शब्दों में 'स्क' संयुक्ताक्षर का प्राकृत हिन्दी में 'ख' हो जाता है और 'कर्षण' से 'काढ़ना' बन जाता है ।

विवरण—कुछ पंडित लोग सोचते हैं कि 'स्तंभ' से 'खंभा' बन गया है । परन्तु हम ऐसा नहीं मान सकते । क्योंकि हम देखते हैं कि संस्कृत शब्द 'स्तंभन' से हिन्दी का 'थाँभना' शब्द निकलता है । और उसका नियम ऊपर 'स्त' का 'थ' होना बतलाया गया है, सो यदि 'स्तंभ' से होता तो 'थंभा' ऐसा रूप प्राकृत में होता । संस्कृत पुष्कर से 'पोखरा' और 'शुष्क' से 'सूखा' ये प्राकृत हिन्दी शब्द साक्षी देते हैं कि 'खंभा' का संस्कृत रूप 'स्कंभ' ही है । यद्यपि 'पुष्कर' और 'शुष्क' दोनों शब्दों में 'ष्क' है 'स्क' नहीं, तो भी प्राकृत में यह भेद माना नहीं जा सकता ।

(चौ०) यह[४] अनुचित[५] नहिं[२] नेवत[१] पठावा[३]

(अर्थ) १ निमन्त्रण २ नहीं ३ पठाया ४ यह ५ अनुचित है ।

अवतरण—ऊपर की चौपाई में 'पठावा' हमारा लक्ष्य है । इसका संस्कृत रूप 'प्रस्थापन' है । हम यहाँ देखते हैं कि 'स्था' का 'ठ' करके और 'प' के स्थान में पूर्वोक्त नियमानुसार 'व' करके 'पठावना' क्रिया का रूप 'पठावा' कहा गया है सो नियम यह हुआ कि—

(६५) संस्कृत की 'स्था' धातु के, प्राकृत हिन्दी में 'ठ' से बदल कर अनेक रूप बन जाते हैं। यथा:—

संस्कृत धातु 'स्था' से प्राकृत हिन्दी में ये शब्द हुए—ठहरना, ठाँव, ठाहर, ठिकाना, आदि।

२ ३ १ ४ ५
(चौ०) पेड़ काटि तैं पालव सींचा

(अर्थ०) १ तूने २ पेड़ ३ काटकर ४ पल्लव (पत्ता) ५ सींचा। अवतरण—ऊपर की चौपाई में 'काटि' हमारा लक्ष्य है। इसकी साधारण क्रिया 'काटना' है जो संस्कृत 'कर्तन' का तद्भव है। यहाँ हम देखते हैं कि 'र्त' अक्षर 'ट' बन गया है। सो नियम हुआ कि

(६६) संस्कृत शब्द के 'र्त' अक्षर का प्राकृत हिन्दी में कहीं कहीं 'ट' बन जाता है। यथा:—

संस्कृत		तद्भव
(१) नर्तक	... ...	(१) नट
(२) कैवर्त	... ...	(२) केवट
(३) वर्तक	... ...	(३) बटेर

विवरण—'धूर्त' 'मूर्ति' 'कीर्ति' 'आर्ति' आदि में ऐसा नहीं होता। 'गर्त' का तद्भव 'गाड़' वा 'गढ़ा' भी पाया जाता है। सो जानना चाहिए कि:—

(६७) संस्कृत 'गर्त' शब्द का प्राकृत हिन्दी में 'गाड़' वा 'गढ़ा' रूप होता है। यथा 'जम्यौ गाड़ भरि भरि रुधिर'।

१ २ ३ ४
(चौ० रिस परिहास कि सांचेहु सांचा

(अर्थ०) १ रिस का २ परिहास है ३ अथवा ४ सच मुच में।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'साँचा' पद है। इसका संस्कृत रूप 'सत्य' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'सत्य' शब्द का 'त्य' अक्षर 'च' करके पढ़ा गया है। सो नियम होता है कि:—

(६८) संस्कृत के 'सत्य' आदि कुछ शब्दों का 'त्य' अक्षर प्राकृत हिन्दी में 'च' बन जाता है। यथा 'मृत्यु' से 'मीचु' वा 'मीच'।

(चौ०) अजहूं[४] हृदय[३] जरत[५] तेहि[१] आँचा[२]

(अर्थ०) १ उसकी २ आँच से ३ हृदय ४ अब भी ५ जलता है।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'अज हूं' पद है। इसका संस्कृत रूप 'अद्य' है। यहाँ हम देखते हैं कि 'अद्य' का 'द्य' अक्षर 'ज' हो गया है। सो नियम होता है कि:—

(६९) 'अद्य' आदि संस्कृत के कुछ शब्दों का 'द्य' अक्षर प्राकृत हिन्दी में 'ज' हो जाता है।

संस्कृत	तद्भव
(१) विद्युत	(१) बिजुली
(२) द्यूत	(२) जुआ
(३) वाद्य	(३) बाजा
(४) अखाद्य	(४) अखज्ज

विवरण—ऐसे शब्द ६१ वें नियम और २९ वें नियम से सिद्ध हो सकते हैं।

१ २ ३ ४
(दो०) सांझ समउ सानन्द नृप

(अर्थ०) १ सांझ के २ समय ३ आनन्दसहित ४ राजा ।

१ ३ २
(चौ०) यहि समाज थल बूझब राउर

(अर्थ०) १ इस समाज स्थल में २ आप ३ बूझेंगे ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'सांझ' और 'बूझब' पद हैं । इनके संस्कृत रूप 'संध्या' और 'बुद्ध' वा 'बुद्धि' शब्द हैं । यहाँ हम देखते हैं कि पहिले अर्थात् 'संध्या' शब्द के 'ध्य' अक्षर का और दूसरे के 'द्ध' अक्षर का 'झ' हो गया है । सो निमय होता है कि:—

(७०) 'संध्या' और 'बुद्धि' आदि कुछ संस्कृत शब्दों के 'ध्य' और 'द्ध' अक्षर प्राकृत हिन्दी में 'झ' बन जाते हैं ।

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
वंध्या	............बाँझ	संबुद्धि	............समुझ
मध्य	.... मांझ	सिद्ध	.... सीझ
वेध्य	............बेझा	युद्ध	..............जूझ

इत्यादि ।

२ १
(दो०) कौड़ी लागि लोभवश

(अर्थ) १ लोभ के वश २ कौड़ी के लिये—

अवतरण—ऊपर के दोहे में हमारा लक्ष्य 'कौड़ी' शब्द है । इसका संस्कृत रूप 'कपर्दी' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'कपर्दी' का 'र्द' अक्षर 'ड़' बन गया है । सो नियम हुआ कि:—

(७१) 'कपर्दी' आदि कुछेक संस्कृत शब्दों के 'र्द' अक्षर को प्राकृत हिन्दी में 'ड़' होता है। यथा 'मर्दन' से 'माँड़ना'।

(चौ०) करउँ[4] तोहि[2] चखपूतरि[3] आली[1]

(अर्थ) १ हे सखी २ तुझे ३ आँख की पुतरी ४ करूँगी।

(चौ०) छीरसिंधु[2] गवने[3] मुनिनाथा[1]

(अर्थ) १ मुनिनाथ (नारद जी) २ क्षीरसागर को ३ गये।

अवतरण—ऊपर दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'चखपूतरि' और 'छीर सिन्धु' हैं। इनके संस्कृत रूप क्रम से 'चक्षुपुत्तली' और 'क्षीरसिन्धु' हैं। यहाँ हम देखते हैं कि दोनों संस्कृत शब्दों में, अर्थात् चक्षु और क्षीर शब्दों में, यद्यपि एक ही वर्ण 'क्ष' पाया जाता है, तो भी मानस में उसे एक स्थान पर 'ख' कर दिया गया है और दूसरे स्थान में 'छ' पढ़ा गया है। इससे हम जानते हैं कि:—

(७२) संस्कृत शब्दों का 'क्ष' अक्षर प्राकृत हिन्दी में कहीं तो 'ख' और कहीं 'छ' हो जाता है। यथा:—

'ख' होना—

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
अक्षि	आँख	इक्षु	ईख वा ऊख
मक्षी	मक्खी या माखी	क्षेत्र	खेत
अक्षर	आखर	क्षुरप्र...........	खुरपा

'छ' होना

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
क्षोभ	छोभ	लक्ष्मी	लछिमी
क्षमा..........	छिमा वा छमा	क्षुर	छुरा
ऋक्ष..........	रीछ	क्षार..........	छार

विवरण—किसी किसी में एक ही विकार होता है और किसी किसी में दोनों प्रकार के विकार होते हैं। जैसे 'पक्ष' से 'पाख' वा 'पच्छ', 'शिक्षा' से 'सीख' वा 'सिच्छा', 'भिक्षा' से 'भीख' वा 'भिच्छा', 'कुक्षि' से 'कोख' वा 'कोंछी' आदि और भी अनेक हैं।

(चौ०) पच्छिमद्वार[२] रहा[३] बलवाना[१]

(अर्थ) १ बलवान (हनुमान) २ पश्चिम द्वार पर ३ रहे।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य पद 'पच्छिम' है। इसका संस्कृत रूप 'पश्चिम' है। यहाँ हम देखते हैं कि पश्चिम शब्द का 'श्च' अक्षर 'च्छ' कर दिया गया है। सो नियम होता है कि:—

(७३) संस्कृत शब्दों के 'श्च' अक्षर का प्राकृत हिन्दी में 'छ' तब होता है जब कि 'श्च' एक ही शब्द का होवे। यथा—

संस्कृत	तद्भव
(१) पश्चात्,	(१) पीछे,
(२) वृश्चिक,	(२) बीछी।

विवरण—एक ही शब्द का 'श्च' न होने से 'निश्चय' 'आश्चर्य' आदि में नहीं होता । क्योंकि (निः + चय = निश्चय) इसमें 'श्च' दो शब्दों से बन गया है । ऐसे ही आश्चर्य आदि को भी जानो ।

(चौ०) भयउ[4] हृदय[1] आनन्द[2] उछाहू[3]

(अर्थ) १ हृदय में २ आनन्द (और) ३ उत्साह ४ हुआ ।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'उछाहू' है । इसका संस्कृत रूप 'उत्साह' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'उत्साह' शब्द का 'त्स' अक्षर 'छ' करके पढ़ा गया है । सो नियम हुआ कि:—

(७४) संस्कृत शब्दों का 'त्स' अक्षर प्राकृत हिन्दी में कहीं 'च्छ' और कहीं 'छ' हो जाता है । यथा:—

संस्कृत			तद्भव
(१) उत्सव	...	...	(१) उच्छव
(२) उत्संग	...	...	(२) उछंग
(३) मत्स्य	...	...	(३) मच्छ
(४) वत्स	...	...	(४) बच्छा

इसी का तद्भव 'बच्चा' है ।

(चौ०) बरषि[2] प्रसून[1] अपछरा[3] गाई[4]

(अर्थ) १ फूल २ बरसते हैं ३ अप्सरा ४ गाती हैं ।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'अपछरा' है । इसका संस्कृत रूप 'अप्सरा' है । यहाँ हम देखते हैं कि 'प्स' अक्षर

में 'प्' को अलग करके 'स' का 'छ' कर दिया गया है । सो नियम हुआ कि:—

(७५) संस्कृत 'अप्सरा' शब्द प्राकृत हिन्दी में 'अपछरा, बोला जाता है ।

(चौ०) खंजन[1] मंजु[2] तिरीछे[3] नयननि[4]

(अर्थ०) १ खंजन सरीखी २ सुन्दर ३ तिरछी ४ आँखों से ।

अवतरण—ऊपर की चौपाई में 'तिरीछे' हमारा लक्ष्य है । तिरीछे संस्कृत तिर्यञ्च शब्द का तद्भव है । सो हम देखते हैं कि 'ञ्च' का 'छ' बन गया है । इससे नियम हुआ कि:—

(७६) संस्कृत 'तिर्यञ्च' शब्द प्राकृत हिन्दी में 'तिरछा' कहा जाता है ।

विवरण—मानस में 'तिरीछे' पाठ है, 'तिरछा' नहीं ; तो भी जानना चाहिए कि प्राकृत हिन्दी में 'तिरछा' ही होता है, मानस में मात्रा पूर्त्ति के लिए 'तिरछे' को 'तिरीछे' कर दिया गया है ।

(दो०) सीय[1] उठी[3] अकुलाइ[2]

(अर्थ०) १ सीता २ अकुलाकर ३ उठी ।

अवतरण—इस दोहे में हमारा लक्ष्य 'उठी' है यह 'उठना' क्रिया का भूतकालिक रूप है, और 'उठना' संस्कृत 'उत्थान' का तद्भव है । यहाँ हम देखते हैं कि 'त्थ' को 'ठ' कर दिया गया है । सो नियम हुआ कि:—

(७७) संस्कृत शब्द के 'त्थ' अक्षर का कहीं कहीं प्राकृत हिन्दी में 'ठ' हो जाता है।

विवरण—हमने पहले बतलाया है कि 'स्था' धातु को अनेक स्थानों में 'ठ' होता है। उन्हीं में से एक यह भी है। इसमें 'उत्' उपसर्ग जुड़ा है।

(छं०) करि[३] होमु[२] विधिवत[१] गाँठ[४] जोरी[५]

(अर्थ०) १ विधिपूर्वक २ होम ३ करके ४ गाँठ ५ जोड़ी। (ग्रंथिबंधन किया)

अवतरण—ऊपर के प्रमाण में 'गाँठ' शब्द हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'ग्रन्थि' है। यहाँ देखा जाता है कि 'न्थ' अक्षर के स्थान में 'ठ' पढ़ा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(७८) किसी किसी संस्कृत शब्द के 'न्थ' अक्षर का प्राकृत हिन्दी में 'ठ' हो जाता है। यथा मन्थ से 'मठा' (छाछ)।

(दो०) मनुज[२] कि[१] अस[३] बरिवंड[४]

(अर्थ) १ क्या २ मनुष्य ३ ऐसा ४ बलवन्त होता है।

अवतरण—इस दोहे में हमारा लक्ष्य 'बरिवंड' है। इसका संस्कृत रूप 'बलवन्त' है। इसको गोसाईंजी ने अनुप्रास के कारण 'बलवन्त' से 'बरिवंड' कर दिया है। क्योंकि और कहीं हमको उदाहरण नहीं मिलता कि 'न्त' का 'ण्ड' होता हो। सो नियम यह हुआ कि:—

(७९) श्री गोसाईंजी ने कभी कभी अनुप्रास अथवा मात्रापूर्त्ति

आदि के लिए कोई नया शब्द भी बना लिया है। और यह कवि की स्वतंत्रता कही जा सकती है।

(चौ०) बूढ़ भयेसि नत मरतेउँ तोही

(अर्थ) तू १ बूढ़ा २ हुआ ३ नहीं तो ४ तुझे ५ मारता।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'बूढ़' पद है। यह संस्कृत 'वृद्ध' का तद्भव है। यहाँ हम देखते हैं कि 'वृ' का 'वू' तेईसवें नियम के अनुसार होकर फिर पैंतीसवें नियम से 'बू' हो गया और 'द्ध' अक्षर का 'ढ़' कर दिया गया है। सो नियम हुआ कि:—

(८०) कुछ संस्कृत शब्दों के 'द्ध' और का 'र्द्ध' का प्राकृत हिन्दी में 'ढ़' हो जाता है। यथा:—

संस्कृत			तद्भव
(१) वर्द्धकी	...	...	(१) बढ़ई
(२) वर्द्धन	...	...	(२) बढ़ना
(३) सार्ध	...	...	(३) साढ़ वा साढ़े

(चौ०) आपु सरिस खोजौं कहँ जाई

(अर्थ) १ कहाँ २ जाकर ३ अपने सरीखा ४ खोजूँ।

अवतरण—इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'आपु' है। यह संस्कृत 'आत्म' का तद्भव है। यहाँ हम देखते हैं कि 'त्म' को 'प' हो गया है। सो नियम हुआ कि:—

(८१) संस्कृत 'आत्म' का प्राकृत हिन्दी में 'आप' और 'आत्मनः' का 'अपना' बन गया है।

विवरण—यही कालान्तर में आदरसूचक सर्वनाम बन गया।

(चौ०) मुकुत न भयउ हते भगवाना
(३ ४ ५ २ १)

(अर्थ) १ भगवान् के २ मारने पर भी ३ मुक्त ४ न ५ हुए।

अवतरण—इस चौपाई में 'मुकुत' हमारा लक्ष्य है जिसका संस्कृत रूप 'मुक्त' है। यहाँ हम देखते हैं कि संयुक्ताक्षर 'क्त' अलगा कर 'क' में 'उ' स्वर जोड़ दिया गया है। अलगाने के विषय में हम बतला चुके हैं। यहाँ यह देखते हैं कि उससे पूर्व एक 'उ' स्वर है, अर्थात् 'मु' अक्षर 'उ' स्वर से युक्त है इससे अगले 'क' अक्षर में भी कवि ने 'उ' जोड़ दिया है। फिर प्राकृत हिन्दी में हम यह भी देखते हैं कि जहाँ संयुक्ताक्षर में 'इ' स्वर मिला हो वहाँ वर्ण अलगा कर दोनों वर्णों में प्रायः 'इ' जोड़ देते हैं। सो यह नियम हुआ कि:—

(८२) संयुक्ताक्षर से पूर्व यदि 'उ' स्वर होवे तो प्रायः अलगाये हुए वर्णों में से पहले वर्ण में भी प्राकृत हिन्दी में 'उ' स्वर जुड़ जाता है, और यदि संयुक्ताक्षर 'इ' स्वर से संयुक्त हो तो अलगाने पर दोनों वर्णों में प्रायः 'इ' जुड़ जाती है। यथा—

(उ)

संस्कृत		तद्भव
(१) युक्ति	... ...	(१) जुगुत

संस्कृत			तद्भव
(२) गुप्त	...	...	(२) गुपुत
(३) लुप्त	...	...	(३) लुपुत
(४) मुक्ति	...	...	(४) मुकुति

(इ)

संस्कृत			तद्भव
(१) श्री	...	...	(१) सिरी
(२) प्रिया	...	...	(२) पिरिया
(३) क्रिया	...	...	(३) किरिया

विवरण—'प्रायः' इस लिए कहा गया है कि 'कृष्ण' से 'किसुन' 'विष्णु' से 'विसुन' 'पद्म' से 'पदुम' आदि कुछ प्रयोगों की नियम-विरुद्ध सिद्धि होती है। फिर यह नियम अन्यभाषा के शब्दों में भी देखा जाता है। जैसे 'हुक्म' से 'हुकुम,' 'क्रिस्तान' से 'किरिस्तान' आदि।

(चौ०) जो हसि सो हसि मुहँ मसि लाई

(चौ०) होहि निरामिष कबहुँ कि कागा

(चौ०) अजर[२] अमर[३] गुननिधि[४] सुत[१] होहू[५]

(अर्थ) १ हे बेटा, २ जरा-रहित (बुढ़ापे से रहित) ३ अमर (और) ४ गुन की खान ५ होओ।

अवतरण—ऊपर की दो चौपाइयों का अर्थ इसलिए नहीं लिखा गया कि पहिले कहा जा चुका है। इन चौपाइयों में हमारे

लक्ष्य ये हैं—हसि, होंहि और होहू । इनके संस्कृत रूप क्रम से ये हैं—असि, भवन्ति, और भव । 'असि' का तद्भव 'हसि' इस प्रकार से हुआ कि 'असि' के 'अ' का 'ह' कर दिया गया है । यह बात पढ़ने वाले सुगमता से समझ सकते हैं । परन्तु 'भवन्ति' से 'होंहि' और 'भव' से 'होहू' कैसे हो गया यह समझ में शीघ्र नहीं आ सकता, इसलिए इन पर ध्यान देना चाहिए । पहले 'भवन्ति' को लीजिए । हमने ३३ वें नियम में बतलाया है कि 'व' अपने से पूर्व स्वर 'अ' के सहित 'ओ' हो जाता है, यथा 'लवण' से 'लोन' आदि में; उसी नियम से यहाँ 'ओ' हो गया, तब 'भोंति' ऐसा रूप हुआ । फिर हमने ४० वें नियम में यह भी बतलाया है कि "कहीं कहीं 'भ' का 'ह' हो जाता है" उसी नियम से 'भोंति' का 'होंति' ऐसा रूप हुआ । फिर हमने ३६ वें नियम में यह भी बतलाया है कि " 'त' का लोप हो जाता है" उसी नियम से यहाँ भी 'त' का लोप हो गया । तब 'होंति' से 'होंइ' ऐसा रूप हुआ । यहाँ तक तो जो हमने पूर्व में बतलाया था, उससे, सिद्ध हो जाता है । परन्तु मानस में सहस्रों स्थानों में 'होंइ' ऐसा रूप मिलता है, और सहस्रों स्थानों में 'होंइ' के अर्थ में 'होंहि' ऐसा मिलता है । इससे हम जानते हैं कि प्राकृत हिन्दी में कभी कभी 'इ' के स्थान में 'हि' हो जाती है । जब यह नियम ठहर गया, तब 'होंहि' रूप भी सिद्ध हो चुका । अब 'होहू' के विषय में लिखते हैं ।

'भव' से 'हो' कैसे बनता है यह बात ऊपर 'भवंति' के विषय में दिखलाई जा चुकी है । फिर जब संस्कृत का प्रयोग 'कुरु' 'शृणु' आदि आज्ञा

के अर्थ में साधारण लोगों ने बार बार होते हुए देखा तो वे भी 'कुरु' को 'करु' और 'शृणु' को 'सुनु' बोलने लगे। फिर इनके साहचर्य से औरों में भी उन्होंने 'उ' आज्ञा के अर्थ में जोड़ दिया। इस प्रकार 'उ' विधि क्रिया का प्रत्यय बन गया। सो हम प्राकृत नियमानुसार 'हो' धातु का रूप विधि क्रिया में 'होउ' वा 'होऊ' पाते हैं। मानस में सहस्रों स्थानों में 'होउ' वा 'होऊ' मिलता है। फिर इसी अर्थ में हम मानस में 'होहु' वा 'होहू' भी पाते हैं। इससे जाना जाता है कि प्राकृत हिन्दी में कभी कभी 'उ' के स्थान में 'हु' हो जाता है। सो संमिलित नियम यह हुआ कि:—

(८३) प्राकृत हिन्दी में अ—इ—उ के बदले क्रम से ह—हि—हु हो जाता है।

विवरण—'अ' का 'ह' हो जाना स्वाभाविक है क्योंकि दोनों के उच्चारण का स्थान एक ही अर्थात् कण्ठ है। फिर यद्यपि सूक्ष्म-विचारक प्राचीन महर्षियों ने 'इ' और 'उ' का स्थान अलग माना है, परन्तु इतनी सूक्ष्मता साधारण अशिक्षितों के ध्यान में आ नहीं सकती। वे तीनों की ध्वनि को एक ही समान मानते हैं। केवल भेद इतना देखते हैं कि 'अ' स्वर यदि खड़ा मान लिया जाय तो 'इ' पड़ी हुई दशा में और 'उ' बेंड़ी दशा में है। पर हैं वे तीनों एक ही स्वर के रूप। इन तीनों स्वरों के उच्चारण स्थान में जो प्राचीन महर्षियों ने भेद माना है सो अति सूक्ष्म विचार से माना है। इस बात को विद्यार्थी ऐसे समझ लें—चित्त को एकाग्र करके अ—इ—उ इनका उच्चारण वे आप करें, और

ऐसा करते समय अपना ध्यान जीभ के संचलन पर रक्खें, तो वे देखेंगे कि 'अ' का उच्चारण करते समय जीभ कुछ भी नहीं हिलती डोलती—'अ' की ध्वनि सीधी कंठ से निकल कर बाहर चली आती है। इसी प्रकार वे 'ह' के उच्चारण करने में पावेंगे। फिर वे 'इ' के उच्चारण में ध्यान देवें, तो उनको विदित होगा कि 'अ' का उच्चारण करते समय तालु और जीभ के बीच जितनी दूरी रहती है उससे कुछ कम 'इ' का उच्चारण करते समय रहती है; अर्थात् मानों जीभ तालु की ओर उठने का प्रयत्न करती है तो भी वह तालु को छू नहीं लेती। इतनी ही बात को देख कर सूक्ष्म-विचारक महर्षियों ने 'इ' के उच्चारण का स्थान तालु माना है। यह बात इस रीति से और भी स्पष्ट हो जायगी कि विद्यार्थी 'इ' के सहवर्गी 'च' 'छ' आदि वर्णों को बोल कर देखें। ऐसा करते समय वे देखेंगे कि जीभ बिलकुल तालु से लिपट जाती है, परंतु 'इ' के बोलने में ऐसा नहीं होता—उस समय जीभ ऊपर उठने का प्रयत्न मात्र करती है। इतना भेद रहते हुए भी आचार्यों ने 'इ' और 'च' वर्ग का स्थान एक इसी लिए माना है कि दोनों के उच्चारण में जीभ का संचलन एक ही ओर है। चाहे एक में अधिक और दूसरे में कम है, परंतु है एक ही ओर। अब विद्यार्थी 'उ' का उच्चारण करके देखें, तो उनको विदित होगा कि दोनों ओठ मानों जुटना चाहते हैं; तो भी जुट नहीं जाते। फिर 'उ' के सहवर्गी प—फ आदि को बोल कर देखें तो ज्ञात होगा कि प—फ आदि के बोलते समय दोनों ओठ पूरी रीति से जुट जाते हैं। 'उ' और पवर्ग के उच्चारण में इतना भेद रहते हुए भी जो इनका स्थान एक माना गया है; उसका कारण भी

वैसा ही है जैसा हमने 'इ' और चवर्ग के उच्चारण में बतलाया है, अर्थात् अल्पाधिक एक सा प्रयत्न होना। अतएव चाहे 'अ' के उच्चारण से इ—उ के उच्चारण में सूक्ष्मदर्शी महर्षियों के मत में भेद ठहरे, पर बेचारे अशिक्षित साधारण जन उसके समझने में सर्वथा असमर्थ हैं। इसलिए वे अ—इ—उ को एकही सा जान कर यदि 'इ' के बदले 'हि' और 'उ' के बदले 'हु' बोलें; तो उनका ऐसा करना स्वाभाविक ही है, क्योंकि 'अ' और 'ह' एक स्थानीय हैं।

फिर हम 'ग' के स्थान में कभी कभी प्राकृत हिन्दी में 'घ' देखते हैं। जैसे—संस्कृत 'गुञ्जा' शब्द के लिए कहीं कहीं 'घुंघची' बोलते हैं। ऐसे ही 'संगति' के लिए 'संघती' वा 'संघाती' बोलते हैं। और 'नग्न' के लिए नंगा वा 'नंघा' बोलते हैं। इन प्रमाणों से हम यह नियम निकालते हैं कि:—

(८४) प्राकृत हिन्दी में कभी कभी 'ग' के बदले में 'घ' बोलते हैं।

विवरण—ऐसे प्रयोग थोड़े पाये जाते हैं तो भी मिलते अवश्य हैं।

फिर हम कभी कभी प्राकृत हिन्दी में वर्ण-विपर्यय, अर्थात् अक्षरों का उलट फेर, भी देखते हैं। जैसे:—

संस्कृत 'मुद्गर' से प्राकृत हिन्दी में 'मोगदर' वा 'मुगदर' बोलते हैं। इसमें 'द' जो 'ग' से पूर्व था सो प्राकृत हिन्दी में पीछे हो गया। ऐसे ही संस्कृत 'परिधान' से 'पहिरना' है; यदि यह नियमानुसार होता तो 'परिहना' होता। परन्तु ऐसा न होकर अक्षरों का उलट फेर

हो गया । और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं । इससे यह नियम निकला कि—

(८५) प्राकृत हिन्दी में कभी कभी वर्ण-विपर्यय भी होता है ।

संस्कृत	तद्भव	संस्कृत	तद्भव
अस्थि............	हड्डी	यष्टिका.........	लाठी
बाष्प............	भाफ	नील............	लील
बृहस्पति.........	बीफै	कुठार.........	कुल्हाड़ा

इत्यादि अनेक प्रयोग प्राकृत हिंदी में ऐसे हैं कि नियमानुसार नहीं होते । इनके एक एक के लिए चाहे एक एक नियम रचो, चाहे भगवान पाणिनि के 'उणादयो बहुलं' के समान यह कहो कि 'प्राकृते बहुलं' अर्थात् प्राकृत में बहुत भेद हैं ।

इति विश्वेश्वर दत्त विरचिते मानस-प्रबोध व्याकरणे व्यंजन-विकार निरूपणो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

(इति वर्णविचारः समाप्तः)

तीसरा अध्याय

अथ पदविचार:

संस्कृत में विभक्ति-सहित शब्द पद कहलाता है। यही लक्षण हिन्दी में भी माना जाता है। यद्यपि हिन्दी पद में कभी कभी विभक्ति सुनाई नहीं देती तो भी अर्थ में वह अवश्य समझी जाती है। जैसे जब कोई कहता है कि 'मैं रोटी खाता हूँ' तो इस वाक्य में 'रोटी' निर्विभक्तिक पद है। परन्तु अर्थ में उसकी विभक्ति (को) समझी जाती है।

विभक्ति दो प्रकार की हैं—एक तो वे जो संज्ञा से मिली रहती हैं, और दूसरी वे जो क्रिया में मिली रहती हैं। पहले हम संज्ञा का विचार करेंगे। संज्ञा से तीन बातें संबंध रखती हैं—(१) लिंग, (२) वचन, (३) कारक।

मानस वा और किसी छंदो-ग्रंथ में लिंग का बदलाव स्वभावत: नहीं पाया जाता। छंदो-ग्रंथों में यदि कहीं कहीं पुंल्लिंग कर्ता की क्रिया आदि स्त्रीलिंग वा स्त्रीलिंग कर्त्ता की क्रिया आदि पुंल्लिंग मिले तो उसे स्वभावत: न समझना चाहिए, वरन ऐसा अनुप्रास के कारण होता है, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए। जैसे—

(चौ०) सुनहु प्रान प्रिय भावति जी का
देहु एक बर भरतहिं टीका
माँगौं दूसर बर कर जोरी
पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी

इन चौपाइयों में 'जी का' और 'मोरी' ये दोनों विरुद्ध लिंग

दीखते हैं क्योंकि 'जीका' के बदले 'जी की' ऐसा होना इसलिए उचित है कि 'भावति' यह क्रियाद्योतक विशेषण है और 'बात' की विशेषता बतलाता है । क्योंकि अर्थ ऐसा है कि 'हे प्रानप्रिय जी की भावती बात सुनो' तो 'जीकी' के बदले 'जी का' इसलिए कहा गया है कि उत्तर की चौपाई में 'टीका' पद आता है । सो अनुप्रास के कारण स्त्रीलिंग को पुंल्लिंग कर देना पड़ा । ऐसे ही 'मोरी' का विशेष्य पद 'मनोरथ' है, और वह पुँल्लिंग है । होना चाहिए था 'मोरा'; परन्तु पूर्व की चौपाई में 'जोरी' आया है इस कारण इसको 'मोरी' कर देना पड़ा । ऐसे ही अन्यत्र भी समझ लेना चाहिए ।

फिर कारकों के अर्थ का भी बदलाव नहीं होता । जिस कारक का जिस अर्थ में प्रयोग होना हमने अपने 'भाषातत्त्वप्रकाश' में बतलाया है वही अर्थ मानस आदि छंदों-ग्रंथों में भी जानना चाहिए । पदों का जो कुछ बदलाव मानस में देखा जाता है सो वचन और विभक्ति के बदलाव के कारण, और कभी कभी अनुप्रास अथवा कवि की स्वतंत्रता के कारण हुआ है ।

यह बात 'भाषातत्त्वप्रकाश' में बतलाई गई है कि एकवचन में संज्ञा का कुछ बदलाव नहीं होता । मानस में एकवचन का कोई चिह्न नहीं होता । बहुवचन के कारण जो रूप में बदलाव दीखता है उसी को आगे दिखलाते हैं ।

(चौ०) विदुषन[२] प्रभु[१] विराटमय[३] दीशा[४]

(अर्थ) १ प्रभु २ पंडितों को ३ विराट-स्वरूप ४ दिखाई पड़े ।

२ १ ३ ४
(चौ०) पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू

(अर्थ) १ लोगों से २ पूछा (कि) ३ क्या ४ उछाह है।

३ १ २
(छं०) सुनि कोल भिल्लनि की गिरा

(अर्थ) १ कोल भिल्लों की २ वाणी ३ सुनकर—

३ १ २
(चौ०) अंडन्हि कमठ हृदय जेहि भाँती

(अर्थ) १ कछुओं के हृदय में २ जिस प्रकार ३ अंडों का—

अवतरण—इन ऊपर दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य ये हैं:—

(१) विदुषन, (२) लोगन्ह, (३) भिल्लनि और (४) अंडन्हि। ये सब के सब बहुवचन हैं। इनमें हम देखते हैं कि बहुवचन जतलाने के लिए संज्ञा के आगे कहीं तो 'न' कहीं 'न्ह' कहीं 'नि' और कहीं 'न्हि' जोड़ दिया गया है। सो नियम हुआ कि—

(८६) मानस में बहुवचन जतलाने के लिए 'न' 'न्ह' 'नि' और 'न्हि' चिह्न होते हैं।

विभक्ति

मानस में विभक्तियों के विषय में कोई निश्चित नियम नहीं है। कहीं तो विभक्ति छोड़ दी गई है और कहीं जोड़ दी गई है।

निर्विभक्तिक के उदाहरण—

२ ३ ४ ५ १
(चौ०) खल बधि तुरत फिरे रघुवीरा

(अर्थ) १ श्रीरामचन्द्रजी २ दुष्ट को ३ मार कर ४ तुरन्त ५ लौटे।

५ २ १ ३ ४
(चौ०) सोह चाप कर कटि तूनीरा

(अर्थ) १ हाथ में २ धनुष ३ कमर में ४ तर्कस ५ सोहता है।

अवतरण—इन चौपाइयों में खल, रघुवीरा, चाप, कर, कटि, और तूनीरा ये सब पद बिना विभक्ति के हैं। इससे यह नियम होता है कि:—

(८७) मानस में विभक्तियों का जोड़ना वा छोड़ना कवि की इच्छानुसार हुआ है। सो हम जानते हैं कि छन्द में विभक्तियों का जोड़ना वा छोड़ना कवि की इच्छा पर अवलंबित है।

जहाँ विभक्ति जोड़ी जाती है और उसके जैसे जैसे विकार पाये जाते हैं उन्हें आगे लिखते हैं—

३ १ २ ४ ५
(चौ०) मिलिहि उमहिं तसु संशय नाहीं

(अर्थ) १ पार्वती को २ वैसा ३ मिलेगा ४ सन्देह ५ नहीं।

२ १ ३
(दो०) शरनागत कहुँ जे तजहिं

(अर्थ) १ जो २ शरनागत को ३ तजते हैं—

२ ३ ५ १ ४
(चौ०) तिन्ह कह मन्द कहत कोउ नाहीं

(अर्थ) १ कोई २ उनको ३ नीच ४ नहीं ५ कहता ।

(चौ०) समरथ कहँ[2] नहिं[4] दोष[3] गुसाईं[1]

(अर्थ) १ हे गोसाईं २ समर्थ को ३ दोष ४ नहीं ।

(चौ०) पर अकाज लागि[1] तनु[2] परिहरहीं[3]

(अर्थ) १ पराये अकाज के लिए २ शरीर (तक) ३ छोड़ देते हैं ।

(चौ०) सो[1] केवल[2] भगतनहित लागीं[3]

(अर्थ) १ सो २ केवल ३ भक्तों के हित के लिए—

(चौ०) हंसहि[2] बक[1] दादुर[3] चातक[4] ही

(अर्थ) १ बगला २ हंस को (और) ३ मेंडक ४ चातक को (पपीहाको)—

(चौ०) भगतिहेतु[1] विधिभवन[2] विहाई[3]

(अर्थ) १ भक्ति के लिए २ ब्रह्मा का घर ३ छोड़कर—

(चौ०) राम[1] भगत हित[2] नरतनुधारी[3]

(अर्थ) १ राम ने २ भक्तों के लिए ३ मनुष्य का शरीर धारण किया ।

(चौ०) कौतुकलागि[1] भवन[2] लैआवा[3]

(अर्थ) १ कौतुक के लिए २ घर ३ ले आया ।

उदाहरण के पद			अर्थ
(१) उमहिं	...	...	उमा को
(२) शरनागत कहुँ	...	...	शरनागत को
(३) तिन्ह कह	...	...	तिन को
(४) समरथ कहँ	...	...	समर्थ को
(५) पर अकाज लगि	...	...	पराये अकाज के लिए
(६) भगतन हित लागी		...	भक्तों के हित के लिए
(७) हंसहि	...	...	हंस को
(८) चातक ही	...	...	चातक को
(९) भगति हेतु	...	...	भक्ति के लिए
(१०) भगत हित	...	...	भक्तों के लिए
(११) कौतुक लागि	...	...	कौतुक के लिए

अवतरण—इन उदाहरणों के देखने से मालूम होता है कि लोकभाषा में जहाँ कर्म कारक का चिन्ह 'को' बोला जाता है और संप्रदान का चिन्ह 'को' वा 'के लिए' बोला जाता है उनके स्थान में ऊपर के उदाहरणों में 'हिं' आदि विभक्ति लगी हैं। सो नियम हुआ कि:—

(८८) 'को' वा 'के लिए' विभक्ति के बदले मानस में हि, हिं, ही, कहुँ, कह, कहँ, लागि, लगि, लागी, हित वा हेतु,—विभक्तियां काम आती हैं।

विवरण—इनमें से—हि, हिं, ही, कहुँ, कह और कहँ—'को' विभक्ति के, और शेष 'के लिये' के अर्थ में आती हैं।

सूचना—विद्यार्थियों को जानना चाहिए कि कहीं कहीं पुस्तकों में पाठभेद रहता है। सो किसी पुस्तक में कहीं जो विभक्ति निरनुनासिक रहती है वही दूसरी पुस्तक में सानुनासिक मिलती है। जैसे—मान लो कि हमने उदाहरण में 'हंसहि' ऐसा पाठ लिखा है, क्योंकि जिस पुस्तक से हमने उदाहरण संग्रह किये हैं उसमें ऐसा ही पाठ है। संभव है कि किसी दूसरी पुस्तक में यही पाठ 'हंसहिं' होवे, तो ऐसी बात को देखकर विद्यार्थी को घबराना न चाहिए। फिर हमने उदाहरण में 'भगति हेतु' लिखा है। संभव है कि किसी दूसरी पुस्तक में यही पाठ 'भगति हेत' होवे। तात्पर्य यह कि मानस में निरनुनासिक विभक्ति और सानुनासिक विभक्ति में कुछ भेद न मानना चाहिए। विद्यार्थियों को मूल शिक्षा पर ध्यान देना चाहिए।

(चौ०) प्रथम[२] बरात[१] लगनतें[३] आई[४]

(अर्थ) १ बरात २ पहले ३ लग्न से ४ आई।

(चौ०) प्रान ते[३] अधिक[४] राम[१] प्रिय[५] मोरे[२]

(अर्थ) १ राम २ मेरे ३ प्राण से ४ अधिक ५ प्यारे हैं।

(चौ०) तुमसे[३] अधिक[४] गुरुहि[२] जिय[१] जानी[५]

(अर्थ) १ मन में २ गुरु को ३ तुम से ३ अधिक ५ जानकार—

१ २ ३

(दो०) गीधराजसों भेंट भई

(अर्थ) १ गीधराज से (जटायु से) २ भेंट ३ हुई ।

२ १ ४ ३

(दो०) तासनु आइ कीन्ह छल

(अर्थ) १ आकर २ उससे ३ छल ४ किया ।

१ २ ३

(दो०) बहुरि विलोकि विदेहसन

(अर्थ) १ फिर २ देख कर ३ जनक से:—

२ ३ १

(दो०) लीलहि हते कबंध

(अर्थ) १ कबन्ध को २ लीला से (खेल से) ३ मारडाला ।

५ ४ ३ १ २

(चौ०) सोह न समर तुम्हहि रघुपतिहीं

(अर्थ) १ तुमको २ राम से ३ युद्ध ४ नहीं ५ सोहता ।

१ २ ४ ३

(चौ०) मुखहिं निसान बजावहिं भेरी

(अर्थ) १ मुख से २ निशान (डंका) (और) ३ भेरी (घड़ियाल) ४ बजाते हैं ।

उदाहरण	अर्थ	उदाहरण	अर्थ
लगनतें	लग्न से	विदेहसन	जनक से
प्राण ते	प्राण से	लीलहि	लीला से
तुमसे	तुमसे	रघुपतिहीं	राम से
गीधराजसो	गीधराज से	मुखहिं	मुहँ से
तासनु	उससे		

अवतरण—ऊपर के उदाहरणों को देखने से जाना जाता है कि लोक भाषा में जहाँ करण और अपादान कारक की विभक्ति 'से' बोलते हैं उसी के स्थान में मानस में 'तें' आदि विभक्तियाँ कही गई हैं। सो नियम हुआ कि:—

(८९) लोकभाषा की 'से' विभक्ति की जगह मानस में—ते, तें, से, सो, सन, सनु, हि, हिं वा हीं—विभक्ति का प्रयोग हुआ है।

विवरण—किसी किसी पुस्तक में 'तैं' वा 'तै' 'सै' वा 'सों' विभक्तियाँ भी पाई जाती हैं। परन्तु तैं तै 'ते' विभक्ति का, और सै सों 'से' विभक्ति का रूपान्तर हैं।

---

१ २ ३ ४

(चौ०) पितु आयसु सब धरमक टीका ।

(अर्थ) १ पिता की आज्ञा २ सब ३ धर्मों का ४ सिर है।

१ २ ४ ३

(चौ०) यहि विवाह अति हित सबही का ।

(अर्थ) १ इस २ विवाह में ३ सब लोगों का ४ बहुत भला है।

१ २ ३ ४ ५ ६ ८ ७

(छं०) कौशिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही।

(अर्थ) १ विश्वामित्र को २ पूजते ३ परम प्रीति की ४ रीति ५ तो ६ नहीं ७ कही ८ जाती।

३ १ ४ ५ २

(चौ०) प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जन की

(अर्थ) १ सज्जन २ इसजन की ३ प्रौढ़ता (हठवाद) ४ न ५ समझें।

(चौ०) राम लषन[२] सम प्रिय[३] तुलसी[१] के

(अर्थ) १ तुलसीदास के २ रामलक्ष्मण के समान ३ प्यारे हैं।

(सो०) कथा[२] राम[१] कै गूढ़[३]

(अर्थ) १ राम की २ कथा ३ गूढ़ है।

(चौ०) बन्दौं[४] नाम[३] राम[२] रघुवर[१] को

(अर्थ) १ रघुवर के २ राम (इस) ३ नाम की ४ वन्दना करता हूँ।

(दो०) धरि[३] सीता[१] कर रूप[२]

(अर्थ) १ सीता का २ रूप ३ धरके।

(चौ०) सो[१] सुग्रीव[२] केर लघु[३] धावन[४]

(अर्थ) १ वह २ सुग्रीव का ३ छोटा ४ धावन (हरकारा) है।

(चौ०) प्रभु[१] कह[२] गरल[३] बंधु[५] शशि केरा[४]

(अर्थ) १ प्रभु ने २ कहा (कि) ३ विष ४ चन्द्रमा का ५ भाई है।

(दो०) चेरी[२] कैकयकेरि[१]

(अर्थ) १ कैकय देश की २ दासी।

(चौ०) सुनि[४] कठोर[२] वानी[३] कपि[१] केरी

(अर्थ) १ बन्दर की २ कड़ी ३ बातें ४ सुनकर।

(चौ०) मन[१] महँ समुझि[४] वचन[३] प्रभु[२] करे

(अर्थ) १ मन में २ प्रभु के ३ वचन ४ समझ कर।

(चौ०) अपर[1] सुतहिं[3] अरिमर्दन[2] नामा

(अर्थ) १ दूसरे बेटे का २ नाम ३ अरिमर्दन था।

(चौ०) जासु[1] कथा[2] कुंभज[3] ऋषि[4] गाई[5]

अर्थ १ जिसकी २ कथा ३ अगस्त्य ४ ऋषि ने ५ कही

(चौ०) भए[5] मगन[4] छवि[2] तासु[1] बिलोकी[3]

(अर्थ) १ उसकी २ सुन्दरता ३ देख कर ४ मग्न ५ हो गये।

उदाहरण	अर्थ	उदाहरण	अर्थ
धरमक	धर्म का	सुग्रीवकेर	सुग्रीव का
सब ही का	सब लोगों का	शशिकेरा	चन्द्रमा का
प्रीति कि	प्रीति की	कैकयकेरि	कश्मीर की
जन की	जन की	कपिकेरी	बन्दर की
तुलसी के	तुलसी के	प्रभुकेरे	प्रभु के
राम कै	राम की	सुतहिं	बेटे का
रघुवर को	रघुवर का	जासु	जिसकी
सीताकर	सीता का	तासु	उसकी

अवतरण—इन उदाहरणों को देख कर हम यह नियम निकालते हैं कि:—

(६०) लोक-भाषा की संबंध-कारक की विभक्ति (का, के, की,) के बदले मानस में—क, का, कि, की, के, कै, को, कर, केर, केरा, केरि, केरी, केरे, हिं वा सु—विभक्तियां काम में आई हैं।

विवरण—'सु' विभक्ति 'जा' और 'ता' से ही जुड़ती है। कभी कभी 'का' से भी जुड़ी हुई पाई जाती है। ये तीनों अर्थात् 'जा' 'ता' 'का' 'जे' 'से' और 'कौन' वा 'को' सर्वनाम के रूपान्तर हैं। 'सु' के बदले 'सू' भी मिलता है। जैसे—जासू, तासू आदि। 'कै' विभक्ति का रूपान्तर 'कइ' भी कहीं कहीं मिलता है।

(छं०) जलनिधि [१] महु परौं [२]

(अर्थ) १ समुद्र में २ डूबूँ—

(चौ०) मन [२] महँ [३] रामहिं [४] सुमिरि सयानी [१]

(अर्थ)) १ सयानी २ मन में ३ राम को ४ स्मरण करके।

(चौ०) छनमहु [३] मिटे [४] सकल [१] श्रुति सेतू [२]

(अर्थ) १ संपूर्ण २ वेदों की मर्यादा ३ छन भर में ४ मिट गई।

(चौ०) एहिमहुँ [१] रघुपति नाम [३] उदारा [२]

(अर्थ) १ इसमें २ उदार ३ राम का नाम है।

(दो०) अधिक [२] सोच [३] मनमाहिं [१]

(अर्थ) १ मन में २ अधिक ३ सोच है।

(चौ०) राम प्रताप [२] प्रगट [३] एहिमाहीं [१]

(अर्थ) १ इसमें २ राम का प्रताप ३ प्रगट है।

(चौ०) जनु [१] मधु-मदन-मध्य [२] रति [३] लसई [४]

(अर्थ) १ मानों २ चैत्र और कामदेव के बीच में ३ रति ४ शोभा पाती है ।

(चौ०) भरत[1] वचन[2] सुनि माँझ[3] त्रिवेनी

(अर्थ) १ भरत का वचन २ सुन कर ३ त्रिवेणी के बीच ।

(चौ०) केकइ[2] कत[3] जनमी[4] जग माँझा[1]

(अर्थ) १ जगत में २ कैकेई ३ क्यों ४ जनमी ।

(चौ०) कूदि[3] परा पुनि[1] सिंधु[2] मझारी

(अर्थ) १ फिर २ समुद्र में ३ कूद पड़ा ।

उदाहरण	अर्थ	उदाहरण	अर्थ
जलनिधिमह ...	समुद्र में	एहिमाहीं ...	इसमें
मनमहँ	मन में	मदन मध्य ...	काम के बीच
छनमहु	क्षण में	माँझ त्रिवेणी...	त्रिवेणी के बीच
एहि महुँ... ...	इसमें	जगमाँझा ...	जगत् में
मनमाहिं ...	मन में	सिंधुमझारी...	समुद्र में

अवतरण—इन उदारहणों को देखने से जान पड़ता है कि लोक-भाषा में जहाँ कहीं 'में' विभक्ति काम में आती है मानस में वहाँ 'महँ' आदि विभक्तियाँ काम आती हैं। सो नियम हुआ कि:—

(९१) लोक-भाषा की 'में' विभक्ति के बदले मानस में—मह, महँ, महु, महुँ, माहिं, माहीं, मध्य, माँझ, माँझा वा मझारी—विभक्तियाँ काम आती हैं ।

विवरण—जान पड़ता है कि ये सब विभक्तियाँ 'मध्य' की सन्तान हैं। क्योंकि 'मध्य' से 'मध', फिर 'मध' से 'मह', फिर इसी के रूपान्तर 'महँ' आदि हुए। वर्णविचार में कहे हुए 'ध्य' के स्थान में 'झ' होने के नियम से 'माँझ' आदि हुए। और 'मध्य धारा' के तद्भव 'मझारा' वा 'मझारी' आदि समझिए। यदि कहीं 'माह' वा 'माहँ' रूप मिले तो जानना कि 'माहिँ' का रूपान्तर है।

(चौ०) एहि [२] धनु [३] पर ममता [४] केहि [१] हेतू

(अर्थ) १ किस कारण से २ इस ३ धनुष पर ४ ममता है।

(दो०) डाँटेहि [२] पै नव [३] नीच [१]

(अर्थ) १ नीच २ डाटने ही पर ३ नवता है।

(दो०) काटेहि [२] पइ कदली [१] फरै [३]

(अर्थ) १ केला २ काटने ही पर ३ फलता है।

(चौ०) गुरु पद पदुमप [२] लोटत [३] प्रीते [१]

(अर्थ) १ प्रसन्न २ गुरु के चरण कमल पर ३ लोटते हैं।

उदाहरण	अर्थ	उदाहरण	अर्थ
धनु पर ...	... धनुष पर	काटेहि पै ...	काटने ही पर
डाँटेहि पै...	डाँटने ही पर	गुरुपदपदुमप	गुरुचरण कमल पर

अवतरण—इन उदाहरणों से जाना जाता है कि 'पर' विभक्ति के चार रूप होते हैं। सो नियम हुआ कि:—

(६२) लोक-भाषा की 'पर' विभक्ति के बदले मानस में—पर, पै, पइ और प—विभक्तियाँ पाई जाती हैं।

(चौ०) कहउँ[3] कहाँ[2] लगि नाम[1] बड़ाई

(अर्थ) १ नाम की बड़ाई २ कहाँ तक ३ कहूँ।

(दो०) तब[2] लगि कुशल[3] न[4] जीव[1] कहँ

(अर्थ) १ जीव को २ तब तक ३ कुशल ४ नहीं।

अवतरण—ऊपर दिये हुए प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'कहाँ लगि' और 'तबलगि' हैं। लोक भाषा में इनके रूप 'कहाँ लों' वा 'कहाँ तक' वा 'कहाँ तलक' हैं। ऐसे ही तबलों = तबतक = तब तलक हैं। सो नियम हुआ कि:—

(६३) लोक-भाषा की 'तक' 'तलक' वा 'लों' विभक्ति के स्थान पर मानस में 'लगि' विभक्ति आती है।

विवरण—कहीं कहीं 'लगे' भी मिलता है। यथा 'आजु लगे कीन्हिउँ तुव सेवा' इसमें 'लगे' 'तक' के अर्थ में आया है।

---

१ ४ ३ २
(चौ०) हे विधि मिलइ कवनविधि बाला

(अर्थ) १ हे परमेश्वर २ लड़की ३ किस प्रकार से ४ मिले।

१ २ ३
(चौ०) रे हत भाग अधम अभिमानी

(अर्थ) १ रे मन्दभाग्य वा अभागे २ नीच ३ घमंडी—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में 'हे विधि' और 'रे हतभाग' हमारे लक्ष्य हैं। लोक-भाषा में भी इनको ऐसे ही बोलते हैं। सो नियम हुआ कि:—

(६४) संबोधन की विभक्तियाँ लोकभाषा और मानस में तुल्य होती हैं।

---

२ १
(दो०) गए हिमाचल पासु

(अर्थ) १ हिमाचल के पास २ गये।

१ ३ २
(चौ०) शंभु गयउ कुम्भज ऋषि पाहीं

(अर्थ) १ शिवजी २ अगस्त्य ऋषि के पास ३ गये।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) गुरु सिख देइ राय पहिं गयउ

(अर्थ) १ गुरु २ शिक्षा ३ देकर ४ राजा के पास ५ गये।

१ २ ३ ४
(चौ०) सभय नरेश प्रिया पहि गयउ

(अर्थ) १ डरते डरते २ राजा ३ प्यारी के पास ४ गये।

२ ३ ४ १ ५

(चौ०) ते सब शिव पहँ मैं अनुमाने

(अर्थ) १ मैंने २ उन ३ सबको ४ शिवजी के पास ५ सोचा है ।

मानस			लोकभाषा
(१) पासु	...	...	(१) पास
(२) ऋषिपाहीं	...	...	(२) ऋषि के पास
(३) रायपहिं	...	...	(३) राजा के पास
(४) प्रिया पहिँ	...	...	(४) प्यारी के पास
(५) शिव पहँ	...	...	(५) शिव के पास

अवतरण—इन उदाहरणों को देखने से यह नियम निकला कि:—

(९५) लोकभाषा में जिस अर्थ में 'पास' का प्रयोग होता है उसी अर्थ में मानस में—पासु, पाहीं, पहिं, पहि वा पहँ—होता है।

इति बिश्वेश्वरदत्त विरचिते मानस-प्रबोध-व्याकरणे
विभक्ति-निरूपणो नाम तृतीयोऽध्यायः ।

———

चौथा अध्याय

सर्वनाम

(चौ०) मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा

(अर्थ) १ मैंने २ अपनी ओर से ३ निहोरा किया।

(चौ०) सो मैं सब विधि कीन्ह ढिठाई

(अर्थ) १ सो २ मैंने ३ सब प्रकार से ४ ढिठाई ५ की।

(चौ०) महीं सकल अनरथ कर हेतू

(अर्थ) १ मैं हीं २ सब ३ अनर्थों की ४ जड़ हूँ।

(दो०) महूँ सनेह सकोच वस

(अर्थ) १ मैं भी २ स्नेह और संकोच के बस—

(दो०) होंहु कहावत सब कहत

(अर्थ) १ मैं २ कहाता हूँ (और) ३ सब ४ कहते हैं।

(छं०) जीवित विवाह न हौं करौं

(अर्थ) १ मैं २ जीतेजी ३ विवाह ४ नहीं ५ करूँगी।

अवतरण—इन ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद हमारे लक्ष्य

हैं। वे सब उत्तम पुरुष 'मैं' के कर्ताकारक एकवचन के रूप हैं। इसलिए—

(६६) लोक-भाषा में उत्तम पुरुष एकवचन कर्ताकारक में जो 'मैं' रूप होता है उसके बदले मानस में—मैं, मै, महीं, महूँ, हों और हौं—ये छः रूप पाये जाते हैं।

विवरण—यद्यपि ये छः रूप हैं परन्तु मुख्य करके तीन ही मानना चाहिए—(१) मैं, (२) म, (३) हौं; दूसरे तीन इन्हीं के रूपान्तर हैं। 'महीं' वा 'महू' प्राकृत हिन्दी में तब बोलते हैं जब उत्तम पुरुष अपने विषय में बल देकर बोलता है। फिर कहीं कहीं किसी किसी प्रति में 'मइ' वा 'मइँ' रूप भी देखा जाता है, परन्तु यह 'मैं' वा 'मै' का रूपान्तर मात्र है।

(चौ०) हम[1] छत्री[2] मृगया[4] वन[3] करहीं[5]

(अर्थ) १ हम २ छत्री हैं ३ वन में ४ अहेर ५ करते हैं।

(दो०) जौं[1] हम[2] निदरहिं[5] विप्र[3] वदि[4]

(अर्थ) १ यदि २ हम ३ ब्राह्मण ४ बोलकर ५ अनादर करें।

(चौ०) सब प्रकार[2] हम[1] तुम्हसन[3] हारे[4]

(अर्थ) १ हम २ सब प्रकार से ३ तुमसे ४ हारे हैं।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखा लगे पद उत्तम पुरुष कर्ता कारक बहुवचन के रूप हैं। सो नियम होता है कि:—

(९७) कर्ता के बहुवचन में उत्तम पुरुष 'मैं' शब्द का मानस में भी लोक-भाषा के समान केवल एक रूप, अर्थात् 'हम' होता है ।

(दो०) एहिते[१] जानहु[४] मोर[२] हित[३]

(अर्थ) १ इससे २ मेरा ३ भला ४ जानते हो ।

(दो०) मनिति[२] मोरि[१] सब[३] गुन[४] रहित[५]

(अर्थ) १ मेरी २ कविता ३ सब ४ गुणों से ५ रहित है ।

(चौ०) समुझि[४] विविध[२] विधि विनती[३] मोरी[१]

(अर्थ) १ मेरी २ अनेक प्रकार से ३ विनती ४ समझकर—

(चौ०) मोरे[३] शरन[४] राम[१] की पनहीं[२]

(अर्थ) १ राम की २ जूती ३ मेरे लिए ४ शरण है ।

(चौ०) वचन[२] अन्यथा[३] होइ[५] न[४] मोरा[१]

(अर्थ) १ मेरा २ वचन ३ झूठा ४ नहीं ५ होता ।

(चौ०) सब[३] विधि नाथ[१] पूज्य[५] तुम्ह[२] मेरे[४]

(अर्थ) १ हे नाथ २ तुम ३ सब प्रकार से ४ मेरे ५ पूज्य हो ।

(दो०) अहोभाग्य[४] मम[१] अमित[३] अति[२]

(अर्थ) १ मेरा २ अत्यन्त ३ असीम ४ अहोभाग्य है ।

अवतरण—इन ऊपर के प्रमाणों में सब रेखा लगे पद उत्तम पुरुष संबंध-कारक एकवचन के रूप हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(६८) उत्तम पुरुष के संबंध-कारक एकवचन में मेरा, मेरे, मेरी की जगह मानस में—मोर, मोरि, मोरी, मोरे, मोरा, मेरे और मम—ये रूप होते हैं।

विवरण—(मम) यह रूप संस्कृत का है।

---

१ २ ३ ४
(चौ०) हमरे बयरु तुम्हौं बिसराई

(अर्थ) १ हमारे २ वैर से ३ तुम को भी ४ भुला दिया।

१ ३ ४ २
(चौ०) जो कछु पुन्य प्रभाउ हमारे

(अर्थ) १ यदि २ हमारे ३ कुछ ४ पुण्य का प्रभाव होवे—

४ ३ १ २
(चौ०) परम धरम यह नाथ हमारा

(अर्थ) १ हे स्वामी २ हमारा ३ यह ४ परमधर्म है।

३ २ ४ ५ १
(दो०) कहा हमार न सुनेउ तब

(अर्थ) १ तब २ हमारा ३ कहना ४ नहीं ५ सुना।

२ १ ३ ४
(चौ०) यह हमारि अति बड़ि सेवकाई

(अर्थ) १ हमारी २ यह ३ अत्यन्त बड़ी ४ सेवकाई है।

२ १ ४ ३ ५
(चौ०) जीअत हमहिं कुँवरि को बरई

(अर्थ) १ हमारे २ जीते ३ कौन ४ कुँअरी को ५ वर सकता है ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद उत्तम पुरुष संबंध-कारक के बहुवचन के रूप हैं । सो हम देखते हैं कि:—

(६६) उत्तम पुरुष संबंधकारक बहुवचन के (हमारा-हमारे-हमारी) के बदले मानस में हमरे, हमारे, हमारा, हमार, हमारि, और हमहिं—ये रूप होते हैं ।

विवरण—जानना चाहिए कि ये रूप 'हमारा' वा 'हमार' के रूपान्तर हैं । 'हमहिं' यह रूप असाधारण है । प्रायः ऐसा नहीं होता । हमारो, हमरो, हमारी, हमरी, ये रूप यद्यपि मानस में नहीं पाये जाते तो भी छन्द में आवश्यकता होने से हो सकते हैं ।

(चौ०) सो मोसन कहिजात न कैसे

(अर्थ) १ वह २ मुझसे ३ कैसे ४ नहीं ५ कहा जाता ।

(चौ०) जानि कृपाकरि किंकर मोहू

(अर्थ) १ मुझे २ दास ३ जानकर ४ कृपा करके—

(चौ०) निज बुधिबल भरोस मोहि नाहीं

(अर्थ) १ मुझे २ अपनी बुद्धि के बल का भरोसा ३ नहीं है ।

(चौ०) मोते अधिक ते जड़मति रंका

(अर्थ) १ वे २ मुझसे ३ अधिक ४ जड़ बुद्धि (और) ५ दरिद्र होंगे।

(दो०) मोपर[1] होहु[3] कृपाल[2]

(अर्थ) १ मुझपर २ कृपाल ३ होओ।

(चौ०) राम[1] सुस्वामि[2] कुसेवक[4] मोसो[3]

(अर्थ) १ राम (तो) २ अच्छे स्वामी (और) ३ मुझसा ४ बुरा सेवक।

(चौ०) कहिय[4] बुझाइ[3] कृपानिधि[1] मोहीं[2]

(अर्थ) १ हे कृपानिधान २ मुझको ३ समझाकर ४ कहिए।

उदाहरण	अर्थ	कारक
मोसन ...	मुझसे ...	अप्र-कर्ता
मोहू ...	मुझको ...	कर्म
मोहि ...	मुझको ...	संप्रदान
मोते ...	मुझसे ...	अपादान
मोपर ...	मुझपर ...	अधिकरण
मोसे ...	मुझसा ...	विशेषण
मोहीं ...	मुझसे ...	कर्म (विभक्ति से)

इन उदाहरणों को देखकर हम जानते हैं कि:—

(१००) शेष कारकों के एकवचन में उत्तम पुरुष का मानस में प्राकृत हिन्दी का रूप 'मो' है । उसके आगे इष्ट कारक की विभक्ति जोड़ दी जाती है ।

विवरण—'हू' 'हि' विभक्ति का रूपान्तर है, और 'सो' 'सा' का रूपान्तर है । कहीं कहीं 'महि' और 'मुहि' रूप भी मिलता है, यह भी 'मोहि' का रूपान्तर समझना चाहिए ।

(चौ०) ब्रह्म[1] सभा[2] हम सन[3] दुखमाना

(अर्थ) १ ब्रह्मसभा में ३ हमसे २ दुःख माना है ।

(चौ०) जौं[2] अनाथहित[1] हम पर[3] नेहू[4]

(अर्थ) १ हे अनाथों के मित्र २ यदि ३ हम पर ४ स्नेह होवे ।

(दो०) हमहिं[2] कृपाकरि[1] देहु[3]

(अर्थ) १ कृपा करके २ हमको ३ दो ।

(चौ०) बिदाहोन[1] हम[2] इहां[3] पठाए[4]

(अर्थ) १ बिदा होने को २ हमें ३ यहां ४ भेजा है ।

इन प्रमाणों में रेखा लगे पद हमारे लक्ष्य हैं । वे सब उत्तम पुरुष के शेष कारकों के बहुवचन के रूप हैं । सो नियम हुआ कि—

(१०१) उत्तम पुरुष शेष कारक बहुवचन का रूप प्राकृत हिन्दी में 'हम' होता है, और फिर उससे विभक्ति जोड़ दी जाती है ।

विवरण—जो जो रूप उत्तम पुरुष के दोनों वचनों में मानस में दिखाये गये हैं वे प्रायः गँवई गाँवों में बोले जाते हैं, अतएव प्राकृत हैं।

मध्यम पुरुष

१ २ ३ ४
(दो०) जननी तू जननी भई

(अर्थ) १ हे मा २ तू ३ मा ४ हुई।

२ १ ३ ५ ६ ४
(चौ०) को तूँ अहसि सत्य कहु मोहीं

(अर्थ) १ तू २ कौन ३ है ४ मुझसे ५ सच ६ कह दे।

२ १ ५ ४ ३
(चौ०) कह दशकण्ठ कवन तैं बन्दर

(अर्थ) १ रावण ने २ कहा ३ हे बन्दर ४ तू ५ कौन है।

२ ३ १ ४ ५
(चौ०) पेड़ काटि तैं पालव सींचा

(अर्थ) १ तूने २ पेड़ को ३ काट कर ४ पत्ते को ५ सींचा है।

१ २ ३ ४
(चौ०) अंगद तहीं बालिकर बालक

(अर्थ) १ हे अंगद २ तूही ३ बालि का ४ लड़का है

ऊपर दिये हुए प्रमाणों में रेखा लगे शब्द हमारे लक्ष्य हैं, और वे मध्यम पुरुष कर्त्ता कारक के एकवचन के रूप हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१०२) मानस में मध्यम पुरुष 'तू' शब्द के कर्त्ता के एकवचन—में तू, तूँ, तै, तैं, और तहीं—ये रूप होते हैं।

विवरण—कहीं कहीं 'तइ' वा 'तइँ' रूप भी मिलते हैं, परन्तु ये क्रम से 'तै' और 'तैं' के रूपान्तर हैं।

(चौ०) तुम[4] हटकहु[5] जो[1] चहहु[3] उबारा[2]

(अर्थ) १ यदि २ उबारा ३ चाहते हो (तो) ४ तुम ५ बरजो।

(दो०) तुम्ह[1] चाहत[4] सुख[3] मोहवश[2]

(अर्थ) १ तुम २ मोह के वश ३ सुख ४ चाहते हो।

(चौ०) रहेहु[3] तुम्हौ[1] बल विपुल विशाला[2]

(अर्थ) १ तुम भी २ बहुत बड़े बलवान् ३ रहे हो।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद मध्यम पुरुष कर्ता कारक के बहुवचन के रूप हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१०३) मानस में मध्यम पुरुष कर्त्ता कारक के बहुवचन में—तुम, तुम्ह, और तुम्हौ—रूप मिलते हैं।

विवरण—यथार्थ में 'तुम' और 'तुम्ह' ये ही दो रूप कहने चाहिएं, क्योंकि 'तुम्हौ' 'तुम्हहु' का रूपान्तर है। और 'तुम्हहु'

तो 'तुम भी' के लिए आया है, अर्थात् 'हु' 'भा' के बदले कहा गया है। कहीं कहीं 'तुम्हइ' ऐसा पाठ भी मिलता है, और यह 'तुम्हहि' वा 'तुम्ह ही' का रूपान्तर है।

४ २ १ ३
(चौ०) करगत वेद तत्व सबु तोरे

(अर्थ) १ सब २ वेदों का तत्त्व ३ तुम्हारे ४ हाथ में है।

५ ४ ३ २ १
(चौ०) कहिहौं देखि प्रीति अति तोरी

(अर्थ) १ तेरी २ अत्यन्त ३ प्रीति ४ देखकर ५ कहूँगा।

३ १ २ ६ ४ ५
(चौ०) करहु सो वेगि दास मैं तोरा

(अर्थ) १ वह २ शीघ्र ३ करो ४ मैं ५ तेरा ६ दास हूँ।

३ ४ ५ १ २ ६
(चौ०) तोर कहा फुर जेहि दिन होई

(अर्थ) १ जिस २ दिन ३ तेरा ४ कहना ५ सत्य ६ होवे।

४ २ ३ १
(दो०) भएउ मनोरथ सफल तव

(अर्थ) १ तुम्हारा २ मनोरथ ३ सफल ४ हुआ।

३ १ २ ५ ४
(चौ०) कालौ तुअ पद नाइहि शीशा

(अर्थ) १ तेरे २ चरण में ३ काल भी ४ माथा ५ नवावेगा।

१ ४ २ ३
(चौ०) आजु लगे कीन्हिउँ तुव सेवा

(अर्थ) १ आजतक २ तेरी ३ सेवा ४ की है।

(दो०) परौं कूप तुँअ वचन पर

(अर्थ) १ तेरी २ बात पर ३ कुआ में ४ गिरजाऊँ।

अवतरण—ऊपर के रेखा लगे पद मध्यम पुरुष संबंध कारक के एकवचन के हैं। सो नियम होता है कि:—

(१०४) मानस में मध्यम पुरुष संबंध-कारक के एकवचन में तोरे, तोरी, तोरा, तोर, तव, तुव, तुअ, और तुँअ रूप होते हैं।

विवरण—इनमें से 'तव' संस्कृत रूप है, और तुव, तुअ, तुँअ ये उसी के तद्भव समझने चाहिएं।

———

(चौ०) तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे

(अर्थ) १ तुम्हारी २ कृपा से ३ मेरे ४ वह भी ५ सुलभ है।

(चौ०) चतुराई तुम्हारि मैं जानी

(अर्थ) १ मैंने २ तुम्हारी ३ चतुराई ४ जानी है।

(चौ०) शैल सुलच्छणि सुता तुम्हारी

(अर्थ) १ हे गिरि २ तुम्हारी ३ बेटी ४ सुलच्छन है।

(चौ०) जौ तुम्हरे मन अति सन्देहू

(अर्थ) १ यदि २ तुम्हारे ३ मन में ४ बड़ा ५ सन्देह है।

१ २ ५ ४ ३
(चौ०) पूत विदेश न सोच तुम्हारे

(अर्थ) १ बेटा २ परदेश में है ३ तुम्हारे ४ सोच ५ नहीं है।

३ २ ४ १
(चौ०) सिरधरि आयसु करिय तुम्हारा

(अर्थ) १ तुम्हारी २ आज्ञा ३ शिर पर धारण करके ४ करना चाहिए।

२ १ ३ ४ ५
(चौ०) कह प्रभु तुम्हार पनु रहेउ

(अर्थ) १ प्रभु ने २ कहा ३ तुम्हारा ४ पन (पण) ५ रहा।

अवतरण—ऊपर दिये प्रमाणों में रेखा लगे पद मध्यम पुरुष संबंधकारक के बहुवचन के हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१०५) मानस में मध्यम पुरुष संबंध कारक के बहुवचन में—तुम्हरी, तुम्हारि, तुम्हारी, तुम्हरे, तुम्हारे, तुम्हारा और तुम्हार—ये रूप मिलते हैं।

विवरण—'तुम्हरिअ', 'तुम्हरेइ', 'तुम्हरिहि' आदि भी इन्हीं के रूपान्तर जानने चाहिएं।

---

४ ५ १ ३ २
(चौ०) राम कवन प्रभु पूछों तोहीं

(अर्थ) १ हे प्रभु २ तुझसे ३ पूछता हूँ (कि) ४ राम ५ कौन हैं।

२ ३ १
(दो०) सपन सुनावौं तोहि

(अर्थ) १ तुझे २ सपना ३ सुनाती हूँ।

(चौ०) सपनेहु तोपर कोप न मोही

(अर्थ) १ मुझे २ तुझ पर ३ स्वप्न में भी ४ क्रोध ५ नहीं है।

अवतरण—ऊपर दिये प्रमाणों में रेखा लगे पद मध्यम पुरुष के एकवचन में कर्त्ता और संबंध-कारक से भिन्न कारक के हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१०६) मानस में मध्यम पुरुष के शेष कारकों के एकवचन का मूल रूप 'तो' होता है, फिर उसके आगे विभक्ति लग जाती है।

विवरण—कहीं कहीं 'तोहु' ऐसा रूप भी मिलता है।

(चौ०) तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई

(अर्थ) १ राम की २ प्रभुता ३ तुमको ४ विदित (ज्ञात) है।

(चौ०) हमरे वयरु तुम्हौं बिसराई

(अर्थ) १ हमारे २ वैर से ३ तुमको भी ४ भुला दिया।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा खींचे पदों से हम जान सकते हैं कि:—

(१०७) मानस में मध्यम पुरुष का शेष कारकों के बहुवचन में मूल रूप 'तुम्ह' होता है, फिर उसके पीछे विभक्ति जुड़ जाती है।

अन्य पुरुष यह शब्द

१ २ ३ ४
(चौ०) यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ

(अर्थ) १ यह २ साधारण ३ राजा का ४ स्वभाव होता है।

१ ३ ४ २
(चौ०) तिनकहुँ सुखद हासरस येहू

(अर्थ) १ उनको २ यह ३ सुख देनेवाला ४ हासरस होगा।

४ १ २ ३
(चौ०) नाहिन आलि इहौ सन्देहू

(अर्थ) १ हे सखी २ यह भी ३ सन्देह ४ नहीं है।

२ १
(चौ०) वेदपुरान सन्तमत एहू

(अर्थ) १ यह २ वेदपुरान और सन्तों का मत है।

१ २ ५ ४ ३
(चौ०) सत्य कहेहु गिरिभव तनु एहा

(अर्थ) १ सच २ कहा ३ यह ४ शरीर ५ पहाड़ से हुआ है।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे हुए पद अन्य पुरुष 'यह' के कर्ता कारक के एकवचन के रूप हैं। इससे हम जान सकते हैं कि:—

(१०८) मानस में अन्य पुरुष 'यह' शब्द के कर्ता कारक के एकवचन में—यह, येहू, इहौ, एहू, और एहा—रूप होते हैं।

विवरण—हमने वर्ण विचार में 'य' अक्षर के विषय में बतलाया है कि 'य' का 'ए' 'इ' विकार होता है। इस कारण 'यह' के अनेक प्रकार के रूप पाये जाते हैं, जैसे कहीं 'येह', कहां

'येहि', कहीं 'एह', कहीं 'यहु', कहीं 'इहइ' आदि और भी कितने ही हैं ।

(चौ०) कबहुँक[2] ए[1] आवहिं[5] यहि[3] नाते[4]

(अर्थ) १ ये २ कभी ३ इस ४ नाते से ५ आवेंगे ।

(छं०) इन्ह[1] सम[2] येई[3] अहैं

(अर्थ) १ इनके समान २ येही ३ हैं ।

(चौ०) ये[1] बालक[2] असि[3] हठ[4] भल[5] नाहीं[6]

(अर्थ) १ ये २ बालक हैं ३ ऐसी ४ हठ ५ अच्छी ६ नहीं ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'यह' सर्वनाम के कर्ता के बहुवचन हैं । सो नियम होता है कि:—

(१०९) मानस में 'यह' सर्वनाम के कर्ता के बहुवचन में—ए, ये, येई—रूप होते हैं ।

विवरण—कहीं कहीं 'एइ' और 'एहु' भी मिलते हैं ।

(चौ०) जे[1] यहि[3] कथहिं[4] सनेह[2] समेता

(अर्थ) १ जो २ स्नेहसहित ३ इसे ४ कहते हैं ।

(चौ०) यहु[2] प्रसंग[3] मोहिं[4] कहहु पुरारी[1]

(अर्थ) १ हे शिव जी २ यह प्रसंग ३ मुझसे ४ कहो।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में 'यहि' और 'यहु'—'यह' शब्द के एकवचन के कर्म कारक हैं। विस्तार भय से अधिक नहीं दिये जाते परन्तु जानना चाहिए कि 'यह' शब्द के कर्म कारक के एकवचन के रूप कर्ताकारक एकवचन के समान ही होते हैं। सो यह नियम हुआ कि:—

(११०) मानस में 'यह' शब्द के कर्मकारक के एकवचन के रूप प्रायः कर्ता के एकवचन के समान होते हैं। जैसे—यह, येह, एहि, येहु, यहि, यहु, इहै, आदि।

(चौ०) इन्हहिं[२] देखि[३] विधि[१] मन अनुरागा[४]

(अर्थ) १ ब्रह्मा का मन २ इन्हें ३ देख कर ४ प्रसन्न हुआ।

(चौ०) सखि[१] इनकहँ[२] कोउ कोउ[३] अस[४] कहहीं[५]

(अर्थ) १ हे सखि २ इनको ३ कोई कोई ४ ऐसा ५ कहते हैं।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा खींचे पद 'यह' सर्वनाम के कर्मकारक के बहुवचन हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१११) मानस में 'यह' सर्वनाम के कर्म में बहुवचन के रूप—'इन्ह' वा 'इन' मुख्य हैं। पीछे विभक्ति जोड़ दी जाती है।

विवरण—कभी कभी 'इन्है', 'एन्ह', 'ए' आदि भी रूप मिलते हैं जो ऊपर दिये हुओं के तद्भव हैं।

———

(चौ०) यहि[१] विधि सब[२] संशय[३] करि[५] दूरी[४]

(अर्थ) १ इस प्रकार से २ सब ३ सन्देह ४ दूर ५ करके ।

(दो०) होइहि[४] यहि[२] कल्यान[३] अब[१]

(अर्थ) १ अब २ इसका ३ कल्याण ४ होगा ।

(चौ०) कबहुँक[२] ए[१] आवहिं[४] यहिं नाते[३]

(अर्थ) १ ये २ कभी ३ इस नाते से ४ आवें ।

(चौ०) एहिमहुँ[१] रघुपति[३] नाम उदारा[२]

(अर्थ) १ इसमें २ बड़ा ३ राम का नाम है ।

(चौ०) एहि प्रकार[१] बल[३] मनहिं[२] दिखाई[४]

(अर्थ) १ इस प्रकार से २ मन को ३ बल ४ दिखा कर ।

(चौ०) रामचरित[३] मानस एहि[१] नामा[२]

(अर्थ) १ इसका २ नाम ३ रामचरितमानस है ।

(चौ०) कछुदिन[४] जाइ[३] रहौं[५] मिसु[२] एहीं[१]

(अर्थ) १ इसी २ बहाने से ३ जाकर ४ कुछ दिन ५ रहूँ ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा खींचे पद 'यह' सर्वनाम के करण आदि कारकों के एकवचन के रूप हैं । सो नियम हुआ किः—

(११२) मानस में 'यह' सर्वनाम के शेष कारकों के एकवचन में—यहि, यहिं, एहि, एहीं—रूप मिलते हैं।

विवरण—कभी कभी शेषकारकों के एकवचन में—येहि, येह, एहूँ, इहि, या—रूप भी मिलते हैं।

———

१ २ ६ ३ ४ ५
(चौ०) यहु सब भा इन्ह आँखिन आगे

(अर्थ) १ यह २ सब ३ इन ४ आँखों के ५ सामने ६ हुआ।

५ ४ ३ १ २
(चौ०) भयेउ एक मैं इनके लेखे

(अर्थ) १ इनके २ लेखे ३ मैं ४ एक ५ हुआ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखा लगे पद 'यह' सर्वनाम के शेष कारकों के बहुवचन के रूप हैं। सो नियम हुआ कि:—

(११३) मानस में 'यह' सर्वनाम के शेषकारकों के बहुवचन में 'इन' वा 'इन्ह' रूप होते हैं।

विवरण—कभी कभी 'एन्ह' और 'यन्ह' रूप भी मिलते हैं, परन्तु ये पहले दिये हुए रूपों के तद्भव हैं।

———

अन्य पुरुष 'वह' सर्वनाम

१ २
(चौ०) वहु सुख संपति समउ समाजा

(अर्थ) १ वह २ सुख, संपति, समय और समाज—

२ ३ ४ १
(चौ०) सुन्दर सुत जनमति भइं ओऊ

(अर्थ) १ वे भी २ सुन्दर ३ पुत्र ४ जनती हुईं।

१ ३ ४ २
(चौ०) आनि भांति नहिं पावौं ओही

(अर्थ) १ दूसरे प्रकार से २ उसे ३ नहीं ४ पाऊँगा।

३ १ ४ २
(चौ०) सादर पुनि पुनि पूछति ओही

(अर्थ) १ बार बार २ उससे ३ आदर के साथ ४ पूछती है।

२ १ ५ ४ ३
(चौ०) मुनि एक नाम चन्द्रमा ओही

(अर्थ) १ एक २ मुनि थे ३ उनका ४ चन्द्रमा ५ नाम था।

१ ४ ३ २
(चौ०) पितावचन मनतेउँ नहिं ओहू

(अर्थ) १ (चाहे) वह पिता का वचन था (परन्तु) २ उसे भी ३ नहीं ४ मानता।

२ १ ३ ४ ५
(चौ०) साँचेहु उन्हके मोह न माया

(अर्थ) १ उनके २ सचमुच ३ मोह ४ नहीं ५ माया (नहीं)।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'वह' सर्वनाम के कर्त्ता आदि कारकों के दोनों वचनों के हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि—

(११४) मानस में 'वह' सर्वनाम के कर्त्ता आदि कारकों के

दोनों वचनों में—वहु, ओाऊ, ओाही, ओाहू और उन्ह—ये रूप मिलते हैं।

विवरण—'वह' सर्वनाम का मूल रूप कर्त्ता और कर्म के एकवचन में 'वह' और कर्त्ता के बहुवचन तथा शेष कारकों के दोनों वचनों में मूल रूप 'ओा' समझना चाहिए। उसके पीछे 'ही' 'हू' आदि विभक्ति जुड़ी हैं। कहीं कहीं 'ओाहि' और 'वोह' भी मिलता है। मानस में 'वह' सर्वनाम का थोड़ा उपयोग किया गया है। उसके बदले में 'सो' का प्रयोग अधिक हुआ है।

(सो)

१ ४ ३ २
(चौ०) सो बिलगाइ बिहाइ समाजा

(अर्थ) १ वह २ समाज ३ छोड़ कर ४ अलग हो जावे।

२ १ ३ ४
(चौ०) सोइ कृपाल मोहि अति प्रियलागा

(अर्थ) १ हे कृपाल २ वही ३ मुझे ४ बहुत प्यारा लगा है।

२ ३ ४ १
(चौ०) राम अनादि अवधपति सोई

(अर्थ) १ वही २ राम ३ अनादि ४ अयोध्या के राजा हैं।

२ ३ ५ ४ १
(चौ०) राम नाम बिनु सोह न सोऊ

(अर्थ) १ वह भी २ रामनाम के ३ बिना ४ नहीं ५ सोहती।

१ २ ३ ४
(चौ०) सोउ सरवज्ञ जथा त्रिपुरारी

(अर्थ) १ वह भी २ सर्वज्ञ हैं ३ जैसे ४ महादेवजी।

२ ३ १
(चौ०) सोपि राम महिमा मुनिराया

(अर्थ) हे मुनिराज २ वह भी ३ राम की महिमा है।

२ ३ ४ ५ १
(चौ०) ते दोउ बंधु विलोकेसि जाई

(अर्थ) १ जाकर २ उन ३ दोनों ४ भाइयों को ५ देखा।

१ २ ३ ४ ५
(सो०) तेहि कछु कान न कीन्ह

(अर्थ) १ उसने २ कुछ ३ कान ४ नहीं ५ किया।

१ २ ५ ४ ३
(चौ०) जेहि पावा राखा नहिं ताहू

(अर्थ) १ जिसने २ पाया ३ उसने भी ४ नहीं ५ रक्खा।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सो' सर्वनाम के कर्त्ता कारक के एकवचन के रूप हैं सो नियम हुआ कि:—

(११५) मानस में 'सो' सर्वनाम के कर्ता के एकवचन में—सो, सोइ, सोई, सोउ, सोऊ, सोपि, ते, तेहि और ताहू—रूप मिलते हैं।

विवरण—इन रूपों में से मुख्य रूप—सो, ते, और ता—हैं। जो इनके पीछे 'इ' 'उ' वा 'हि' 'हू' जुड़े हैं सो निश्चयार्थ द्योतक

'ही' और 'भी' के स्थान में हैं—'इ' तो 'हि' के लिए और 'उ' वा 'हु' 'हू' 'भी' के लिए हैं। 'सोऽपि' यह संस्कृत रूप है।

(चौ०) ते[1] यहि[2] ताल[3] चतुर[4] रखवारे[5]

(अर्थ) १ वे २ इस ३ ताल के ४ चतुर ५ रक्षक हैं।

(चौ०) तेइ[1] सुरवर[2] मानस[3] अधिकारी[4]

(अर्थ) १ वे ही २ श्रेष्ठ देवता हैं (और) ३ मानस के ४ अधिकारी हैं।

(चौ०) तेउ[3] न[4] जानहिं[5] मरम[2] तुम्हारा[1]

(अर्थ) १ तुम्हारा २ भेद ३ वे भी ४ नहीं ५ जानते हैं।

(चौ०) वेष[2] प्रताप[3] पूजियत[1] तेऊ

(अर्थ) १ वे भी २ वेष के प्रताप से ३ पूजे जाते हैं।

(चौ०) तिन्ह[1] निज[2] ओर न[4] लाउब[5] भोरा[3]

(अर्थ) १ वे २ अपनी ओर से ३ भूल ४ न ५ करेंगे।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सो' सर्वनाम के कर्त्ता के बहुवचन के रूप हैं। इसलिए नियम हुआ कि:—

(११६) मानस में 'सो' सर्वनाम के कर्त्ता के बहुवचन में—ते, तेइ, तेउ, तेऊ, और तिन्ह—रूप पाये जाते हैं।

विवरण—मुख्य रूप 'ते' और 'तिन्ह' हैं; 'इ' वा 'उ' जो उसके पीछे जुड़े हैं सो क्रम से 'हि' और 'भी' के अर्थ के द्योतक हैं। 'ते' यह रूप संस्कृत का है। कहीं कहीं 'तें' और 'तेई' भी मिलते हैं। परन्तु वे ऊपर दिये हुओं के रूपान्तर समझने चाहिएं।

(चौ०) समाचार सब ताहि सुनाए

(अर्थ) १ सब २ समाचार ३ उसे ४ सुनाये।

(चौ०) सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही

(अर्थ) १ पंडित लोग २ उसे ३ आदर सहित ४ कहते ५ सुनते हैं।

(दो०) हनूमान तेहि परसा

(अर्थ) १ हनुमान ने २ उसे ३ छुआ।

(चौ०) सकल विघिन व्यापहिं नहिं तेही

(अर्थ) १ उसे २ संपूर्ण ३ विघ्न ४ नहीं ५ व्यापते।

(चौ०) शरन गये प्रभु ताहु न त्यागा

(अर्थ) १ शरन जाने पर २ प्रभु ने ३ उसे भी ४ नहीं ५ त्यागा।

(चौ०) आये शरन तजौं नहिं ताहू

(अर्थ) १ शरन २ आने पर ३ उसको भी ४ नहीं ५ छोड़ूँ—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सो' सर्वनाम के कर्मकारक एकवचन के रूप हैं। सो नियम होता है कि:—

(११७) मानस में 'सो' सर्वनाम के कर्म के एकवचन में—ताहि, ताही, तेहि, तेही, ताहु और ताहू—रूप होते हैं।

विवरण—मुख्य रूप पहले की तरह 'ता' और 'ते' जानने चाहिए; शेष विभक्तियाँ 'भी' के पर्याय वाची चिन्ह हैं।

(चौ०) जिन्ह[१] मोहि[२] मारा[३] ते[५] मैं[४] मारे[६]

(अर्थ) १ जिन्होंने २ मुझे ३ मारा ४ मैंने ५ उन्हें ६ मारा।

(चौ०) अहो[१] भाग्य मैं[२] देखिहौं[४] तेई[३]

(अर्थ) १ अहोभाग्य है २ मैं ३ उन्हीं को ४ देखूँगा।

(चौ०) तिन्हहिं[२] देखि[३] गर्जेउ[४] हनुमाना[१]

(अर्थ) १ हनूमान २ उन्हें ३ देखकर ४ गर्जे।

अवतरण—ऊपर लिखे प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सो' सर्वनाम के कर्म के बहुवचन के रूप हैं। सो नियम होता है कि:—

(११८) मानस में 'सो' सर्वनाम के कर्मकारक के बहुवचन में—ते, तेई, तिन्हहिं, रूप होते हैं।

विवरण—'ते' और 'तिन्ह' ये मुख्य रूप हैं। कहीं कहीं 'तेउ' और 'तिन' भी पाये जाते हैं।

(चौ०) तेहि करि विमल विवेक विलोचन

(अर्थ) १ विवेक के २ नेत्र ३ उससे ४ निर्मल ५ करके—

(चौ०) तापर बाँधेउ तनय तुम्हारे

(अर्थ) १ उसपर २ तुम्हारे ३ बेटे ने ४ बाँध लिया।

(चौ०) तासु दूत बंधनतर आवा

(अर्थ) १ उसका २ दूत ३ बंधन में ४ आया।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सो' सर्वनाम के शेषकारकों के एकवचन के हैं। सो नियम होता है कि:—

(११९) मानस में 'सो' सर्वनाम के शेषकारकों के एकवचन के रूप—तेहि, तापर, तासु, आदि होते हैं।

विवरण—यद्यपि सब कारकों के ये रूप नहीं हो सकते परन्तु इनके मुख्य रूप 'ते'—'ता' सबमें पाये जायँगे, और उन उन कारकों की विभक्ति पीछे जुड़ जायगी; जैसा कि 'ते' से 'हि' जुड़ने से 'तेहि' रूप देखा जाता है। कभी कभी 'तेही' 'तासू' भी पाये जाते हैं परन्तु वे इन्हींके रूपान्तर हैं।

---

२ ३ ४ १

(चौ०) तिनकहुँ सुखद हासरस एहू

(अर्थ) १ यह २ उनको ३ सुख देने वाला ४ हास्यरस होगा।

३ १ २ ५ ४

(चौ०) तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी

(अर्थ) १ कथा २ सुनकर ३ उनको ४ फीकी ५ लगेगी।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सो' सर्वनाम के शेषकारकों में से बहुवचन के हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१२०) मानस में 'सो' सर्वनाम के शेषकारकों के बहुवचन में मुख्य रूप 'तिन' और 'तिन्ह' मिलते हैं जिनके पीछे कारकों की विभक्ति जुड़ी रहती है।

——

(जो)

१ ३ २ ४ ५

(चौ०) जो सहि दुख परछिद्र दुरावा

(अर्थ) १ जो २ दुःख ३ सहकर ४ दूसरे के छिद्रों को ५ ढांपता है।

३ १ २ ४ ५

(चौ०) वन्दनीय जेहिं जग जसु पावा

(अर्थ) १ जिसने २ जगत में ३ वन्दना के योग्य ४ यश को ५ पाया है।

१ २ ३ ४

(चौ०) जौं जग जंगम तीरथराजू

(अर्थ) १ जो २ संसार में ३ चलता फिरता हुआ ४ प्रयाग है।

(चौ०) देखि पूर विधु बाढ़ै जोई

(अर्थ) १ जो २ पूर्णचन्द्र को ३ देखकर ४ बढ़ता है।

(चौ०) भनिति विचित्र सुकविकृत जोऊ

(अर्थ) १ जो २ अच्छे कवि की की हुई ३ विचित्र ४ कविता है।

(चौ०) जोसि सोसि तव चरन नमामी

(अर्थ) १ जो है २ सो है ३ तेरे ४ चरणों को ५ नमस्कार करता हूँ।

(चौ०) जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई

(अर्थ) १ जो जो २ सगुन ३ जानकी को ४ होते हैं।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जो' सर्वनाम के कर्त्ता के एकवचन में पाये जाते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि:—

(१२१) मानस में 'जो' सर्वनाम के कर्त्ता के एकवचन में—जो, जेहि, जौं, जोई, जोऊ, जोइ और (य + असि = योसि =) जोसि रूप होते हैं।

विवरण—'जौं' रूप असाधारण है और 'जोसि' संस्कृत 'योसि' का तद्भव है, जिसमें 'असि' क्रियापद मिला है, और अर्थ होता है कि—'जो है'।

२ ३ ४ ५ १

(चौ०) जे जड़ चेतन जीव जहाना

(अर्थ) १ संसार में २ जो ३ जड़ ४ चेतन ५ जीव हैं।

४ ३ २ १

(चौ०) लखि सुवेषु जगवंचक जेऊ

(अर्थ) १ जो २ जगत् के ठग हैं (उनका) ३ सुन्दर वेष ४ देखकर—

२ ३ १

(दो०) सब वर्णन पर जोउ

(अर्थ) १ जो २ सब ३ अक्षरों के ऊपर—

२ ३ १

(चौ०) गुरुपदप्रीति नीति रत जेई

(अर्थ) १ जो २ गुरु चरणों में प्रीति करते (और) ३ नीति-परायण हैं।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जो' सर्वनाम के कर्त्ता के बहुवचन के रूप हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१२२) मानस में कर्त्ता के बहुवचन में 'जो' सर्वनाम कर्त्ता के जे, जेऊ, जोउ, और जेई—रूप होते हैं।

विवरण—जो, जेउ, जोऊ, और जेइ-रूप भी हो सकते हैं।

१ २ ३ ४

(चौ०) जे जे वर के दोष बखाने

(अर्थ) १ जो जो २ वर के ३ दोष ४ बखाने हैं—

१ २ ५ ३ ४

(चौ०) जेहि राखहिं रहु घर रखवारी

(अर्थ) १ जिसको २ रखते हैं (कि) ३ घर की ४ चौकसी के लिए ५ रहो।

३ १ ४ २

(चौ०) निशिदिन देव जपत हहु जेही

(अर्थ) १ हे देव २ जिसको ३ रातदिन ४ जपते हो—

२ ४ १ ३

(दो०) जाहि धरहिं मुनि ध्यान

(अर्थ) १ मुनि २ जिसका ३ ध्यान ४ धरते हैं।

३ १ ४ २

(चौ०) अरिवस दैव जिश्रावत जाही

(अर्थ) १ दैव २ जिसको ३ शत्रु के वश में ४ जिश्राता है।

२ ३ १

(चौ०)* कोटि विप्रवध लागइ जाहू

(अर्थ) १ जिसको २ करोड़ ब्राह्मण की हत्या ३ लगे।

२ ३ ४ १

(दो०) जो विलोकि रीझइ कुँवरि

(अर्थ) १ कुमारी २ जिसको ३ देखकर ४ रीझे—

५ ४ १ ३ २

(चौ०) वंचेहु मोहि जवनि धरि देही

(अर्थ) १ जो २ देह ३ धरकर ४ मुझे ५ ठगा है।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जो' सर्वनाम के कर्मकारक के एकवचन के रूप हैं। सो नियम हुआ कि:—

---

* यद्यपि इस चौपाई में 'जाहू' पद संप्रदान का है, तो भी कर्म और संप्रदान दोनों के रूप एक समान ही होते हैं।

(१२३) मानस में 'जो' शब्द के कर्मकारक एकवचन के रूप—जे, जेहि, जेही, जाहि, जाही, जाहू, जो, जवनि, होते हैं।

विवरण—'जवनि'—'जौन' शब्द का रूप है, और 'जौन'—'जो' का पर्याय-वाची है। जाकहँ, जाकहुँ, जिहि, जिहिं, ये रूप भी कहीं कहीं मिलते हैं।

———

२ ३ ४ ५ १
(चौ०) जे पद परसि तरी ऋषिनारी

(अर्थ) १ ऋषिपत्नी २ जिन ३ चरणों को ४ छू जाने से ५ तर गई।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) जिन्हहिं निरखि मग सांपिनि बीछी

(अर्थ) १ जिनको २ देखकर ३ मार्ग में ४ सांपिन ५ बीछी—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जो' सर्वनाम के कर्मकारक बहुवचन के रूप हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१२४) मानस में 'जो' सर्वनाम के कर्मकारक बहुवचन में 'जे', 'जिन्हहिं'—रूप मिलते हैं।

विवरण—'जेइ' वा 'जेई' और 'जिन' रूप भी हो सकते हैं। 'जिन्हहिं' में मूलरूप 'जिन्ह' है।

१ २ ३
(सो०) जाहि दीनपर नेह

(अर्थ) १ जिसको २ दीनों पर ३ प्रेम है।

४ २ ३ १
(चौ०) बड़े भाग उर आवइ जासू

(अर्थ) १ जिसके २ हृदय में ३ आवे ४ (उसके) बड़े भाग्य हैं।

५ ३ ४ २ १ ६
(चौ०) जब जेहि जतन जहां जो पाई

(अर्थ) १ जिसने २ जहाँ ३ जिस ४ जतन से ५ जब ६ पाया है।

२ ३ ४ १
(चौ०) सन्तत सुरानीक हित जेहीं

(अर्थ) १ जिसको २ सदा ३ अच्छी मदिरा वा देवसेना ४ हित है।

२ १ ३ ४
(चौ०) वचन वज्र जेहि सदा पियारा

(अर्थ) १ जिसको २ वचनरूपी वज्र ३ सदा ४ प्यारा है।

३ ४ १ २ ५
(चौ०) जासु कथा कुंभज ऋषि गाई

(अर्थ) १ अगस्त्य २ ऋषि ने ३ जिसकी ४ कथा ५ कही है।

४ ५ ३ १ २
(चौ०) सब विधि सुलभ जपत जिसु नामू

(अर्थ) १ जिसका २ नाम ३ जपने में ४ सब प्रकार से ५ सुलभ है।

२ १ ३ ४
(चौ०) जा दिन ते हरि गर्भहि आये

(अर्थ) १ हरि २ जिस दिन से ३ गर्भ में ४ आये।

२ १ ३
(छं०) जाकरि तैं दासी

(अर्थ) १ तू २ जिसकी ३ दासी है।

२ ३ ४ १
(चौ०) जाबल शीस धरत सहसानन

(अर्थ) १ शेषजी २ जिसके बल से ३ मस्तक पर ४ धरते हैं।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जो' सर्वनाम के शेषकारकों के एकवचन के रूप हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१२५) मानस में 'जो' सर्वनाम के शेषकारकों के एकवचन में—जाहि, जासू, जेहि, जेही, जासु, जिसु, जा, जाकरि—ये रूप होते हैं।

विवरण—जासु, जासू, जिसु, जाकरि, जाके, और (कभी कभी) जसु, ये रूप संबंधकारक के हैं। शेष शेष के जानने चाहिएं।

---

१ २ ३ ४
(चौ०) जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना

(अर्थ) १ जिनके २ कान ३ समुद्र के ४ समान हैं।

२ ३ १ ४ ५
(चौ०) लोचन चातक जिन्ह करि राखे

(अर्थ) १ जिन्होंने २ आँखों को ३ पपीहा ४–५ कर रक्खा है।

अवतरण—ऊपर के रेखा लगे पद 'जो' सर्वनाम के शेषकारकों के बहुवचन के रूप हैं। सो नियम होता है कि:—

(१२६) मानस में 'जो' सर्वनाम के शेषकारकों का बहुवचन में 'जिन्ह' रूप होता है।

विवरण—'जिन' भी हो सकता है।

(कोई)

२ ३ ५ ४ १

(चौ०) सुनि आचरजु करै जनि कोई

(अर्थ) १ कोई २ सुनकर ३ आश्चर्य ४ न ५ करे।

१ ३ २

(दो०) गये जान सब कोइ

(अर्थ) १ जाने पर २ सब कोई ३ जानेंगे।

२ ३ ४ ५ १

(चौ०) सो फल तुरत लहब सब काहू

(अर्थ) १ सब कोई २ वह ३ फल ४ तुरन्त ५ पावेंगे।

२ ३ ४ १

(दो०) हित अनहित नहिं कोउ

(अर्थ) १ कोई २ मित्र ३ शत्रु ४ नहीं।

२ १ ४ ३

(चौ०) राखे सरन जान सबकोऊ

(अर्थ) १ सरन में २ रक्खा ३ (यह) सब कोई ४ जानता है।

१ ४ २ ३ ५

(चौ०) केहि न सुसंग बड़ापन पावा

(अर्थ) १ किसने २ सत्संग से ३ बड़ापन ४ नहीं ५ पाया।

१ २ ३ ४ ५ ६

(चौ०) मोहि केउ सपनेहु सुखद न लागा

(अर्थ) १ मुझे २ कोई ३ सपने में भी ४ सुख देने हारा ५ नहीं ६ लगा।

१ ३ ४ २

(चौ०) पुरनर नारि न जानेउ केही

(अर्थ) १ नगर के पुरुष स्त्री २ किसीने ३ नहीं ४ जाना।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'कोई' सर्वनाम के कर्त्ताकारक के रूप हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१२७) मानस में 'कोई' सर्वनाम के कर्त्ता के एकवचन में—कोई, कोइ, काहू, कोउ, कोऊ, केहि, केउ, केही—ये रूप होते हैं।

विवरण—'कोई' सर्वनाम का बहुवचन नहीं होता। उसको दुहराने से, अथवा उसके पूर्व 'सब' लगा देने से बहुवचन जाना जाता है जैसे ऊपर के प्रमाणों में—सब कोइ, सब काहू, सब कोऊ—रूप बहुवचन के बोधक हैं।

---

१ २ ४ ३

(चौ०) लोकहु वेद विदित सब काहू

(अर्थ) १ लोक में २ वेद में ३ सब किसीको ४ विदित है।

२ १

(दो०) सुखद सबकाहू

(अर्थ) १ सब किसीको २ सुख देने वाला है।

२ ३ ५ ४ १

(चौ०) काहुहि दोष देहु जनि ताता

(अर्थ) १ हे प्यारे २ किसीको ३ दोष ४ मत ५ दो।

१ २ ५ ४ ३

(चौ०) हम काहू के मरहिं न मारे

(अर्थ) १ हम २ किसीके ३ मारने से ४ न ५ मरें।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद शेषकारकों हैं। सो नियम होता है कि:—

(१२८) मानस में 'कोई' सर्वनाम के रूप शेष कारकों में— काहू, काहु, काहुहि काहूके—ये होते हैं ।

विवरण—कहीं कहीं—केहू, केइ, कासु, वा कासू—रूप भी होते हैं ।

(कौन)

२ १ ३ ४
(दो०) को जग जानै जोग

(अर्थ) १ जगत में २ कौन ३ जानने ४ योग्य है ।

४ ५ १ ३ २
(चौ०) राम कवन प्रभु पूछौं तोही

(अर्थ) १ हे प्रभु २ तुझ से ३ पूछता हूँ (कि) ४ राम ५ कौन हैं ।

३ १ २
(चौ०) कवनि रामबिनु जीवनु आसा

(अर्थ) १ राम के बिना २ जीवन की आशा ३ कौन है ।

२ १ ४ ३ ५
(चौ०) कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा

(अर्थ) १ मूर्ख जनक २ कह ३ किसने ४ धनुष ५ तोड़ा है ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'कौन' सर्वनाम के कर्त्ता कारक के रूप हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१२९) मानस में 'कौन' सर्वनाम के कर्ता कारक में दोनों बचनों के—को, कवन, कवनि, कै—रूप होते हैं ।

विवरण—'कौन' के—'के' और 'केइ' रूप भी कहीं कहीं मिलते हैं। परन्तु 'के' बहुवचन का द्योतक है ।

---

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) काहि कहै केहि दूषन देई

(अर्थ) १ किस को २ कहै (और) किस को ४ दूषन ५ देवे ।

२ ३ ४ १ ५
(चौ०) केहि अवराधहु का तुम चहहु

(अर्थ) १ तुम २ किस को ३ आराधती हो (और) ४ क्या ५ चाहती हो ?

३ १ २
(चौ०) उतर देउँ केहि विधि केहि केही

(अर्थ) १ किस प्रकार से २ किस किसको ३ उत्तर दूँ ।

१ ४ २ ३
(दो०) कहहु बसेउ किसु गेह

(अर्थ) १ कहो २ किस का ३ घर ४ बसा है ?

१ २ ५ ३ ४
(चौ०) तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काके

(अर्थ) १ तुम से २ अधिक ३ बड़े ४ किस के ५ पुण्य हैं ।

१ २ ३ ४
(दो०) कवने अवसर का भयउ

(अर्थ) १ किस २ अवसर में ३ क्या ४ हुआ ।

३ १ २
(दो०) चिन्ता कवनिहुँ बात कै

(अर्थ) १ किसी २ बात की ३ चिन्ता—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'कौन' सर्वनाम के शेष कारकों के हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१३०) मानस में 'कौन' सर्वनाम के शेष कारकों में—काहि, केहि, केहि केही, किसु, काके, कवने, और कवनिहुँ—रूप होते हैं ।

विवरण—'केहू', 'कौन', 'कौनु', 'कवनिउ', 'केइ', 'कौने' रूप भी कहीं कहीं मिलते हैं । परन्तु ये सब नियम में कहे हुए रूपों के रूपान्तर समझने चाहिएं । 'कवनिहुँ' वा 'कवनिउ' रूप यद्यपि देखने में 'कौन' केसे जान पड़ते हैं परन्तु अर्थ में वे 'कोई' शब्द के हैं, यह बात हमने 'भाषा-तत्व-प्रकाश' में बतलाई है कि 'कोई' और 'कौन' कभी कभी एक ही अर्थ में बोले जाते हैं ।

---

२ ३ १ ४ ६ ७ ५ ८
(दो०) काह न पावकु जारिसक, का न समुद्र समाइ

(अर्थ) १ आग २ क्या ३ नहीं ४ जला सकती, ५ समुद्र में ६ क्या ७ नहीं ८ समाता ।

२ ३ ४ ६ १ ५
(चौ०) सो तनु राखि करब मैं काहा

(अर्थ) १ मैं २ वह ३ शरीर ४ रखकर ५ क्या ६ करूँगा ।

१ २ ३ ५ ४
(चौ०) राज तजा सो दूषन काहीं

(अर्थ) १ राज्य २ छोड़ा ३ सो ४ क्या ५ दूषन था । (अर्थात् किस दोष के कारण ?)

२ १ ३ ४
(दो०) सीय कि पिय संगु परिहरिहिं

(अर्थ) १ क्या २ सीता ३ पति का संग ४ छोड़ेगी ?

ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'क्या' के रूप हैं । सो हम को मालूम हुआ कि:—

(१३१) मानस में 'क्या' प्रश्नवाची अव्यय के लिए—काह, काहा, का, काहीं, कि—ये रूप मिलते हैं ।

विवरण—कहीं कहीं 'कहा' भी मिलता है, और 'कि' के बदले में कहीं कहीं 'की' आती है । 'कि' का अर्थ कभी कभी 'अथवा' होता है । जैसे:—

१ २ ३ ४
(चौ०) की तनु प्राण कि केवल प्राणा

(अर्थ) १ क्या २ शरीर और प्राण दोनों ३ अथवा ४ केवल प्राण—

इस चौपाई में 'की' दीर्घ प्रश्नात्मक 'क्या' के बदले में है, और 'कि'—'अथवा' के अर्थ में है ।

---

२ ३ १ ५ ४
(चौ०) कछुक दिवस जननी धरु धीरा

(अर्थ) १ हे माता २ कुछ ३ दिन ४ धीर ५ धरो ।

१ ४ २ ३
(चौ०) कछु दिन भोजन वारि बतासा

(अर्थ) १ कुछ दिन तक २ पानी ३ पवन ४ भोजन हुआ ।

१ २ ३ ४
(चौ०) सूपशास्त्र जस किछु व्यवहारा

(अर्थ) १ सूप शास्त्र में २ जैसा ३ कुछ ४ व्यवहार है ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा खींचे पद अनिश्चय वाचक 'कुछ' शब्द के अर्थ में हैं । इससे मालूम हुआ कि:—

(१३२) मानस में कुछ शब्द के अर्थ में—कछुक, कछु, किछु—ये रूप आते हैं ।

विवरण—कभी कभी 'कुछ' भी मिलता है, परन्तु मानस में "कछु' का व्यवहार अधिक पाया जाता है ।

---

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) आप गये अरु औरनि घालहिं

(अर्थ) १ आप तो २ गये हैं ही ३ और ४ दूसरों का भी ५ नाश करते हैं ।

४ ५ २ १ ३
(चौ०) आपन चलेउ गदा कर लीन्ही

(अर्थ) १ हाथ में २ गदा ३ ली (और) ४ आप ५ चला।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों से जाना जाता है कि:—

(१३३) मानस में 'आप' और 'आपन' का प्रयोग कभी कभी 'निज' के अर्थ में किया गया है।

(चौ०) आपु[1] आश्रमहिं[2] धारिय[4] पाऊ[3]

(अर्थ) १ आप २ आश्रम में ३ पांव ४ धारिए।

अवतरण—इस प्रमाण से विदित है कि:—

(१३४) मानस में 'आप' शब्द मध्यम पुरुष 'तू' के बदले आदरार्थ काम में आता है।

(चौ०) आपु[3] सरिस[4] खोजौं[5] कहँ[1] जाई[2]

(अर्थ) १ कहां २ जाकर ३ अपने ४ सरीखा ५ खोजूँ ?

अवतरण—इस चौपाई में 'आपु' 'अपने' के अर्थ में आया है। सो नियम निकला कि:—

(१३५) मानस में 'आप' शब्द अपने के लिए भी आता है।

(छं०) संबंध[3] राजन[1] रावरे[2]

(अर्थ) १ हे राजन २ आपके ३ संबंध सेः—

(चौ०) मोर[1] भाग[2] राउरि[3] गुनगाथा[4]

(अर्थ) १ मेरा २ भाग्य (और) ३ आप की ४ गुन गाथाः—

(चौ०) बूझब[4] राउर[3] सादर[2] साईं[1]

(अर्थ) १ हे स्वामी २ आदर से ३ आप का ४ बूझनाः—

(चौ०) रौरे[2] अंग[3] जोग[4] जग[1] को[5] है[6]

(अर्थ) १ जगत में २ आप के ३ अंग के ४ योग्य ५ कौन ६ है?

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद, अर्थात् 'रावरे' आदि, 'आप' सर्वनाम के संबंधकारक के रूप के बदले में आये हैं। सो हमें मालूम हुआ किः—

(१३६) मानस में 'आप' शब्द के संबंधकारक के रूप के बदले 'राउर' शब्द काम में आता है।

विवरण—'राउर' के ये रूपान्तर पाये जाते हैं राउरि, रावरी, रावरे, रावरो, रौरे, रोरें, रौरिहि, रौरेहि। 'राउरि' वा 'रावरी' स्त्रीलिंग में आते हैं।

(चौ०) राउर[1] नगर[2] कोलाहल[3] होई[4]

(अर्थ) १ राजा के २ नगर में ३ कोलाहल (शोरगुल) ४ होता है ।

अवतरण—इस चौपाई में हम देखते हैं कि 'राउर' शब्द 'राजा' के अर्थ में आया है। सो नियम होता है कि:—

(१३७) मानस में कभी कभी 'राउर' शब्द 'राजा' के अर्थ में आया है ।

विवरण—अनुमान होता है कि 'राउर' शब्द वास्तव में 'राज-कुल' का तद्भव है; फिर धीरे धीरे आदरार्थ भी बोला जाने लगा । इसीसे 'राउर' का अर्थ कभी कभी 'राज-भवन' भी होता है, जैसा कि इस अगले प्रमाण से स्पष्ट है:—

(दो०) भयउ(८) कोलाहल(७) अवध(५) अति(६) सुनि(४) नृप(१) राउर(२) शोरु(३)

(अर्थ) १ राजा का और २ राजभवन का ३ शोर ४ सुनकर ५ अयोध्या में ६ बड़ा ७ कोलाहल ८ हुआ, यहाँ 'राउर' का अर्थ राज-भवन को छोड़ दूसरा नहीं हो सकता ।

(चौ०) सीतहि(१) सेइ(२) करौ(५) हित(४) अपना(३)

(अर्थ) १ सीता को २ सेवा कर ३ अपना ४ भला ५ करो ।

(चौ०) आपन(२) रूप(३) देहु(५) प्रभु(१) मोहीं(४)

(अर्थ) १ हे प्रभु २ अपना ३ रूप ४ मुझे ५ दो ।

(दो०) आपनि(१) दारुन(२) दीनता(३)

(अर्थ) १ अपनी २ दारुन ३ दीनताः—

(दो०) कृपा[2] भलाई[3] आपनी[1]

(अर्थ) १ अपनी २ कृपा (और) ३ भलाई सेः—

(चौ०) अपनी[2] दिसि[3] मैं[1] कीन्ह[5] निहोरा[4]

(अर्थ) १ मैंने २ अपनी ३ ओर से ४ निहोरा ५ किया ।

(चौ०) कहउँ[5] न[4] तोहि[3] मोहबस[2] अपने[1]

(अर्थ) १ अपने २ मोह के कारण ३ तुझ से ४ नहीं ५ कहती हूँ ।

(छं०) आपने[1] वय[2] बल गुनगति

(अर्थ) १ अपने २ वय (उम्र) बल, गुन और चाल सेः—

(छं०) सबहिं[1] अपान[2] सुधि[3] भोरी[4] भई[5]

(अर्थ) १ सब की २ अपनी ३ सुधि ४ भूल ५ गई ।

(१३८) मानस में 'अपना' शब्द के रूप—अपना, आपन, आपनि, आपनी, अपान, अपनी, अपने, और आपने होते हैं ।

(दो०) बिसरा[3] सखिन[1] अपान[2]

(अर्थ) १ सखियों को २ अपनापन ३ भूल गया ।

अवतरण—इस दोहे में 'अपान' का अर्थ 'अपनापन' है। इसलिए हम जानते हैं कि:—

(१३९) मानस में 'अपनापन' के अर्थ में 'अपान' का प्रयोग हुआ है।

---

३ २ ४ १
(दो०) हेतु अपनपउ जान जिय

(अर्थ) १ मन में २ अपना ३ हेतु ४ जानकर—

अवतरण—इस दोहे में 'अपनपउ' शब्द 'अपने' के अर्थ में कहा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(१४०) मानस में 'अपना' के अर्थ में 'अपनपउ' शब्द काम में आया है।

---

२ १ ३ ४ ५
(चौ०) तजहु आस निज निज गृह जाहू

(अर्थ) १ आशा २ छोड़ो ३ अपने अपने ४ घर ५ जाओ।

अवतरण—इस चौपाई में 'अपना' के अर्थ में 'निज' शब्द आया है। इसलिए मालूम हुआ कि:—

(१४१) मानस में 'अपना' के बदले कभी कभी 'निज' शब्द काम में लाया गया है।

---

४ ३ १ २
(चौ०) कीन्हे स्ववश नगर नर नारी

(अर्थ) १ नगर के २ पुरुष और स्त्रियों को ३ अपने वश में ४ किया ।

अवतरण—इस चौपाई में हम देखते हैं कि 'अपने' के बदले 'स्व' आया है । सो नियम होता है कि:—

(१४२) मानस में 'अपने' के लिए कभी कभी 'स्व' शब्द आया है ।

(चौ०) साधु[१] अवज्ञा[२]कर फल[३] ऐसा[४]

(अर्थ) १ साधु के २ अनादर का ३ फल ४ ऐसा होता है ।

(दो०) ऐसे[१] सुभट[२] निकाय[३]

(अर्थ) १ ऐसे २ सुभट (अच्छे जोधा) ३ बहुत से ।

(चौ०) ऐसेइ[१] संशय[२] कीन्ह[४] भवानी[३]

(अर्थ) १ इसी प्रकार २ संदेह ३ पार्वती ने ४ किया ।

(दो०) ऐसिइ[२] प्रश्न[३] विहंगपति[१]

(अर्थ) १ गरुड़ ने २ इसी प्रकार ३ प्रश्न किया ।

(दो०) ऐसेउ[१] वचन[३] कठोर[२] सुनि[४]

(अर्थ) १ ऐसे भी २ कठोर ३ वचन ४ सुनकर—

(चौ०) असिवेक जब देहिं विधाता

(अर्थ) १ जब २ ब्रह्मा ३ ऐसा ४ ज्ञान ५ देवें—

(चौ०) असि प्रतीति परिहरिय न भोरे

(अर्थ) १ ऐसी २ प्रतीति (विश्वास) ३ भूल से भी ४ न ५ छोड़ना ।

(चौ०) तौ असु जाइ सिखावन देहू

(अर्थ) १ तो २ जाकर ३ ऐसा ४ सिखावन ५ देओ—

(चौ०) अइसिउ पीर विहँसि तब गोई

(अर्थ) १ तब २ ऐसी भी ३ पीड़ा ४ मुसकरा कर ५ छिपाई ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखा लगे पद 'ऐसा' के अर्थ में पाये जाते हैं । सो नियम हुआ कि:—

(१४३) मानस में 'ऐसा' के अर्थ में ये रूप पाये जाते हैं:— ऐसा, ऐसे, ऐसेइ, ऐसिइ, ऐसेउ, अस, असि, असु, अइसिउ ।

विवरण—ऐस ऐसि, ऐसइ, ऐसिहु, ऐसेई, ऐसी, असा, असी— ये रूप भी आवश्यकता होने पर छन्द में प्रयुक्त किये जा सकते हैं ।

— ——

(चौ०) सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा

(अर्थ) १ जैसा २ प्रान ३ समेत ४ कज्जल का पहाड़ हो ।

(चौ०) मनि मानिक[2] मुकता छवि जैसी[1]

(अर्थ) १ जैसी २ मनि मानिक और मोती की छवि ।

(चौ०) साकबनिक[2] मनिगन[3] गुन जैसे[1]

(अर्थ) १ जैसे २ कुँजड़े को ३ मनिगनों के गुन ।

(चौ०) बन्दौं[2] खल[1] जस[3] शेष[5] सरोषा[4]

(अर्थ) १ खलों की २ वन्दना करता हूँ (वे कैसे हैं) ३ जैसे ४ क्रोधित ५ शेष नाग ।

(चौ०) छरस चारि[3] विधि जसि[1] श्रुति गाई[2]

(अर्थ) १ जैसा २ शास्त्रों में कहा गया है ३ छहों रस के चार भेद (१ भक्ष्य २ भोज्य ३ लेह्य ४ चोष्य)।

(चौ०) जसु[2] वरु[3] मैं[1] वरनेउँ[5] तुम्ह पाहीं[4]

(अर्थ) १ मैंने २ जैसा ३ वर ४ तुमसे ५ कहा है ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जैसा' के अर्थ में आये हैं । सो नियम होता है कि:—

(१४४) मानस में 'जैसा' के इतने रूप मिलते हैं जैसा, जैसी, जैसे, जस, जसि, और जसु ।

(चौ०) अहि गिरि गजसिर सोह न तैसी

(अर्थ) १ वैसी २ सांप पहाड़ और हाथी के सिर में ३ नहीं ४ सोहती ।

(चौ०) तैसेहिं सुकवि कवित बुध कहहीं

(अर्थ) १ पंडित लोग २ वैसे ही ३ अच्छे कवियों की कविता को ४ कहते हैं ।

(दो०) समुझी नहिं तसि बालपन

(अर्थ) १ नहीं २ समझी (क्योंकि) ३ वैसा ४ बालपन था ।

(चौ०) तस कहिहैं। हिय हरिके प्रेरे

(अर्थ) १ भगवान से २ प्रेरित ३ हृदय से ४ वैसाही ५ कहूँगा ।

(चौ०) मिलिहि उमहिं तसु संशय नाहीं

(अर्थ) १ वैसा २ पार्वती को ३ मिलेगा ४ सन्देह ५ नहीं ।

(चौ०) ईश अनीशहिं अन्तर तैसे

(अर्थ) १ वैसा ही २ ईश्वर (और) ३ जीव में ४ भेद है ।

(चौ०) तैसिअ नाथ पुरुष विनु नारी

(अर्थ) १ हे नाथ २ वैसी ही ३ पुरुष के ४ विना ५ स्त्री होती है ।

(चौ०) तैसे[1] शील[2] रूप सुविनीता

(अर्थ) १ वैसा ही २ शील रूप नम्रता आदि ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणो में रेखा लगे पद 'तैसा' के रूपान्तर हैं । इससे हमें मालूम हुआ कि:—

(१४५) मानस में 'तैसा' के इतने रूपान्तर मिलते हैं:—तैसी, तैसेहिं, तसि, तस, तसु, तैसे, तैसिअ, और तैसे ।

विवरण—'तैसा' यद्यपि नहीं कहा गया तो भी उसे भी और—तैस, तैसेई, तैसइ, इन रूपों को भी समझना चाहिये ।

(चौ०) अंगद[1] दीख[4] दसानन[2] वैसा[3]

(अर्थ) १ अंगद ने २ रावण को ३ वैसा ४ देखा ।

अवतरण—इस चौपाई में वैसा पाठ आया है । सो जानना चाहिये कि:—

(१४६) मानस में लोक भाषा के समान 'वैसा' केवल एकही रूप मिलता है ।

विवरण—चाहे मानस में इसके और रूप न पाये जायँ पर तो भी—वैसी, वैसे, वैसइ, वैसै, वैसेई—ये रूप आवश्यकतानुसार छन्द में प्रयुक्त हो सकते हैं ।

---

३ २ ५ १ ४
(चौ०) काटे भुजा सोह खल कैसा

(अर्थ) १ दुष्ट २ बाँह ३ काट डाली जाने पर ४ कैसा ५ सोहता है—

१ ३ ५ २ ४
(चौ०) ऋषिन्ह गौरि देखी तहँ कैसी

(अर्थ) १ ऋषियों ने २ तहां ३ गौरी को ४ कैसा ५ देखा।

१ २ ५ ४ ३
(चौ०) सो मोसन कहिजात न कैसे

(अर्थ) १ वह २ मुझसे ३ कैसे ४ नहीं ५ कहा जाता।

१ ३ ५ ४ २ ६
(चौ०) तेहि जड़ वर बाउर कस कीन्हा

(अर्थ) १ उसने २ कैसे ३ मूर्ख (और) ४ पगला ५ वर ६ किया ?

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'कैसा' के रूप हैं, सो हम जानते हैं कि:—

(१४७) मानस में 'कैसा' के इतने रूप मिलते हैं—कैसा, कैसी, कैसे, और कस।

---

१ ४ २ ५ ३
(दो०) राम कसन तुम्ह कहहु अस

(अर्थ) १ हे राम २ तुम ३ ऐसा ४ क्यों न ५ कहो—

अवतरण—इस दोहे में हम देखते हैं कि 'क्यों न' वा 'क्यों

नहीं' की जगह 'कसन' कहा गया है । सो हमें मालूम होता है कि:—

(१४८) मानस में 'क्यों नहीं' के बदले 'कसन' कहा गया है ।

विवरण—जब 'कसन'—'क्यों नहीं' के बदले होता है तब यह बात सहज ही जानी जाती है कि 'कस' 'क्यों' के बदले होता है । 'कत' भी 'क्यों' के बदले आता है, जैसे:—

(चौ०) केकइ[१] कत[३] जनमी[४] जग[२] माँझा

(अर्थ) १ कैकेई २ जगत में ३ क्यों ४ जनमी ।

(चौ०) जस जस[२] सुरसा[१] बदन[३] बढ़ावा[४]

(अर्थ) १ सुरसा ने २ ज्यों ज्यों ३ मुँह ४ बढ़ाया ।

अवतरण—इस चौपाई में 'जस' का अर्थ चाहे 'जैसे' समझिये, चाहे 'ज्यों' दोनों हो सकते हैं । इससे यह नियम निकाला कि:—

(१४९) मानस में 'ज्यों' के बदले भी 'जस' आता है ।

विवरण—जब 'ज्यों' के लिये 'जस' होता है तब अर्थ से ही सिद्ध है कि 'त्यों' के लिए 'तस' होगा ।

(छं०) जनु[२] बाजि[३] बेषु[४] बनाइ[५] मनसिज[१]

(अर्थ) १ कामदेव २ मानों ३ घोड़े का ४ वेष (रूप) ५ बनाकर—

(छं०) मानहु[2] सरोष[3] भुअंग भामिनि[1]

(अर्थ) १ साँपिन २ मानों ३ क्रोध से—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में 'जनु' और 'मानहु' का अर्थ 'जैसे' है। सो हम जानते हैं कि:—

(१५०) मानस में, उपमा के अर्थ में 'जनु' तथा 'मानहु' का प्रयोग होता है।

विवरण—मनहु, जानो, मानो—भी हो सकते हैं; यथा—

'जागति मनहु मसान' इत्यादि में।

(चौ०) इतना[4] करहु[5] तात[1] तुम[2] जाई[3]

(अर्थ) १ हे प्यारे २ तुम ३ जाकर ४ इतना ५ करो।

(चौ०) एतेहु[2] पर करिहहिं[4] जे[1] शंका[3]

(अर्थ) १ जो लोग २ इतने पर भी ३ शंका ४ करेंगे—

(चौ०) जनु[1] एतनिय[4] विरंचि[2] करतूती[3]

(अर्थ) १ मानो २ ब्रह्मा की ३ करतूत ४ इतनी ही है।

(चौ०) एतनेइ[3] कहेहु[4] भरत सन[2] जाई[1]

(अर्थ) १ जाकर २ भरत से ३ इतना ही ४ कहना।

(चौ०) राजधरम[1] सरवस एतनोई[2]

(अर्थ) १ राजधर्म का सर्वस्व २ इतना ही है।

३ २ ४ १
(चौ०) यतना मन आनत खगराया

(अर्थ) १ हे गरुड़ २ मन में ३ इतना ४ लाते ही:—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'इतना' के रूपान्तर हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१५१) मानस में 'इतना' के ये रूप पाये जाते हैं:—इतना, एतेहु, एतनिय, एतनेइ, एतनोई, और यतना।

विवरण—एता, एती, एते, भी हो सकते हैं।

---

२ ३ १ ५ ४
(दो०) जड़ चेतन जग जीव जत

(अर्थ) १ जगत में २ जड़ ३ चेतन ४ जितने ५ जीव हैं।

२ १
(चौ०) रघुपति चरन उपासक जेते

(अर्थ) १ जितने २ श्रीरामजी के चरणों के उपासक हैं:—

१ ३ ४ ६ ५ २
(चौ०) मिली प्रेमु कहि जाय न जेता।

(अर्थ) १ मिली २ जितना ३ प्रेम था ४ कहा ५ नहीं ६ जाता।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'जितना' के रूप हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१५२) मानस में 'जितना' के रूप जत, जेते, जेता—ये पाये जाते हैं।

विवरण—कहीं कहीं 'जेतने' और 'जिति' भी पाये जाते हैं ।

(चौ०) शक्तिन सहित सकल सुर तेते
(१ शक्तिन, २ सकल, ३ सुर, ४ तेते)

(अर्थ) १ शक्तियों के साथ २ संपूर्ण ३ देवता ४ उतने ही थे ।

अवतरण—ऊपर की चौपाई में 'तेते' पद 'उतने' या 'तितने' के बदले । है सो हम जानते हैं कि:—

(१५३) मानस में 'उतना' का रूपान्तर केवल 'तेते' मिलता है ।

विवरण—आवश्यकतानुसार, छन्द में 'तिति', 'तेता' आदि भी हो सकते हैं ।

(चौ०) कालि लगन भल केतिक बारा
(३ कालि, २ लगन, १ भल, ४ केतिक, ५ बारा)

(अर्थ) १ सुन्दर २ लग्न ३ कल ४ कितने ५ समय पर है ।

(चौ०) देखे जिते हते हम केते
(३ देखे, ४ जिते, ५ हते, १ हम, २ केते)

(अर्थ) १ हमने २ कितने ३ देखे (और) ४ जीते (और) ५ मार डाले ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'कितना' के रूपान्तर हैं । सो नियम हुआ कि:—

(१५४) मानस में 'कितना' के रूपान्तर केतिक, केते—पाये जाते हैं ।

विवरण—कहीं कहीं 'कितिक' और 'केता' भी मिलते हैं ।

१ २ ४ ३

(चौ०) साधु चरित शुभ सरिस कपासू

(अर्थ) १ साधुओं का चरित्र २ शुभ ३ कपास ४ सरीखा होता है ।

२ १ ५ ३ ४

(चौ०) सुनहु लखन भल भरत सरीसा

(अर्थ) १ हे लक्ष्मण २ सुनो ३ भरत के ४ सरीखा ५ भला—

२ ३ ४ १

(चौ०) शुचि सुबंधु नहिं भरत समाना

(अर्थ) १ भरत के समान २ पवित्र (और) ३ अच्छा भाई ४ नहीं ।

५ ३ ४ २ १

(चौ०) उदय केतु सम हित सबही के

(अर्थ) १ सबों २ के लिये ३ केतुके ४ समान ५ उदय (उन्नति)—

१ २

(चौ०) हरि हर जस राकेस राहु से

(अर्थ) १ विष्णु और शिव के यश रूपा पूर्ण चन्द्र के लिये २ राहु के समान ।

१ २

(चौ०) विधिहरि हर मय वेद प्रान सो

(अर्थ) १ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव रूप (और) २ वेद के प्राण समान ।

(चौ०) सन्त समाज[1] पयोधि रमा[2] सी

(अर्थ) १ सन्तों की समाज रूपी समुद्र से (निकली हुई) २ लक्ष्मी सरीखी।

(चौ०) कीन्ह[4] प्रनाम[3] तुम्हारिहि[1] नाईं[2]

(अर्थ) १ तुम्हारी ही २ तरह ३ प्रनाम ४ किया।

(सो०) प्रिय[1] तनु[2] तृन[3] इव[4] परिहरेउ[5]

(अर्थ) १ प्यारा २ शरीर ३ तिनके के ४ समान ५ त्याग दिया।

(चौ०) हिमगिरि[1] निभ तनु[2] कछुएक[3] लाला[4]

(अर्थ) १ हिमालय पहाड़ के समान २ शरीर (और) ३ कुछेक ४ लाल है।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में जिन पदों के नीचे रेखा लगी वे समानता के बतलाने वाले हैं सो नियम हुआ कि:—

(१५५) मानस में समानता सूचक ये शब्द पाये जाते हैं, सरिस, सरीसा, समाना, सम, से, सो, सी, नाईं, इव, निभ।

विवरण—सरीखा, समान, और सा ये भी इसी अर्थ के द्योतक हैं।

(चौ०) अपर[2] हेतु[3] सुनु[4] शैल कुमारी[1]

(अर्थ) हे पार्वती २ दूसरा ३ कारण ४ सुनो।

३ ४ ५ १ २
(चौ०) अवर एक विनती प्रभु मोरी

(अर्थ) १ हे प्रभु २ मेरी ३ और ४ एक ५ विनती है ।

१ ४ २ ३
(चौ०) लोकहु वेद न आन उपाऊ

(अर्थ) १ लोक और वेद में २ और दूसरा ३ उपाय ४ नहीं है।

१ २ ३ ५ ४
(चौ०) लखन तुम्हार शपथ पितु आना

(अर्थ) १ हे लक्ष्मण २ तुम्हारी ३ शपथ ४ और ५ पिता की।

२ १ ३ ४ ५
(चौ०) औरौ जे हरि भगत सुजाना

(अर्थ) १ जो २ और भी ३ ईश्वर के ४ भक्त ५ चतुर हैं।

२ ४ ३ १ ५ ७ ६
(दो०) औरु करै अपराध कोउ और पाव फल भोग

(अर्थ) १ कोई २ और (तो) ३ अपराध ४ करै ५ और (दूसरा) ६ फल का भोग ७ पावे ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'और' सर्वनाम के बदले आये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१५६) मानस में 'और' सर्वनाम के बदले और, औरु, अपर, अवर, आन, आना, औरौ—इतने शब्द काम में आये हैं।

विवरण—'औरउ' भी कहीं कहीं मिलता है। वह 'औरौ' का रूपान्तर समझ लेना चाहिए।

इति विश्वेश्वरदत्त विरचिते मानसप्रबोध व्याकरणे
सर्वनाम निरूपणो नाम चतुर्थोऽध्यायः।

पाँचवाँ अध्याय

(संख्यावाची शब्द)

(चौ०) सकुचौं[५] तात[१] कहत[४] एक[२] बाता[३]

(अर्थ) १ हे प्यारे २ एक ३ बात ४ कहने में ५ सकुचता हूँ।

(चौ०) एकु[१] दारुगत[२] देखिय[४] एकू[३]

(अर्थ) १ एक २ लकड़ी में व्याप्त (पाई जाती) है ३ एक ४ प्रगट देखी जाती है।

(चौ०) सूझ[५] न[४] एको[२] अंग[३] उपाऊ[१]

(अर्थ) १ उपाय का २ एक भी ३ अंग ४ नहीं ५ सूझा।

(चौ०) एकौ[२] जुगुति[३] न[४] मन[१] हठरानी[५]

(अर्थ) १ मन में २ एक भी ३ युक्ति ४ नहीं ५ ठहरी।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'एक' के रूपान्तर हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१५७) मानस में संख्या वाची एक शब्द के रूप—एक, एकु, एकू, एको, और एकौ—मिलते हैं।

विवरण—कहीं कहीं 'येक' और 'एकउ' पाठ भी मिलता है। एक स्थान में 'ऐक' पाठ है, परन्तु विचार करने से जान पड़ा कि सचमुच वह 'ऐक्य' का तद्भव है, 'एक' के अर्थ में नहीं।

(चौ०) एक[1] भरत[2]कर[3] सम्मत[4] कहहीं

(अर्थ) १ कोई कोई २ भरत का ३ सम्मत ४ कहते हैं।

(चौ०) एक[1] उदास[3] भाय सुनि[2] रहहीं[4]

(अर्थ) १ कोई कोई २ सुनकर ३ उदासभाव से ४ रह जाते हैं।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हम देखते हैं कि 'एक' शब्द 'कोई' के अर्थ में आया है। सो हम जानते हैं कि:—

(१५८) मानस में 'कोई' शब्द के बदले कभी कभी 'एक' शब्द आया है।

(चौ०) नाम[1] रूप[2] दुइ[4] ईश[3] उपाधी[5]

(अर्थ) १ नाम (और) २ रूप (ये) ३ ईश्वर की ४ दो ५ उपाधि हैं (उपाधि—उसे कहते हैं जो सचमुच में कुछ न हो परन्तु व्यवहार में माना जाता हो।)

(दो०) सब[2] बरननिपर[3] दोउ[1]

(अर्थ) १ दोनों २ सब ३ वर्णों पर (विराजते हैं)।

२ ३ ४ १

(चौ०) आखर मधुर मनोहर दोऊ

(अर्थ) १ दोनों २ अक्षर ३ मधुर (और) ४ मनोहर हैं ।

३ २ १

(दो०) सम प्रकाशतम पाख दुहुं

(अर्थ) १ दोनों २ पाख ३ समान प्रकाश और अंधेरेवाले हैं ।

१ २ ५ ३ ४

(चौ०) मोरे मत बड़ नाम दुहूँ ते

(अर्थ) १ मेरे २ मत में ३ नाम ४ दोनों से ५ बड़ा है ।

३ १ २

(चौ०) उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी

(अर्थ) १ चतुर २ दुभाषी ३ दोनों का जतलाने हारा है ।

१ २ ३ ५ ४

(चौ०) दुहु दिशि पर्वत करहिं प्रहारा

(अर्थ) १ दोनों २ ओर से ३ पर्वत पर ४ प्रहार ५ करते हैं ।

३ १ २

(चौ०) विप्र शाप ते दूनौ भाई

(अर्थ) १ दोनों २ भाई ३ ब्राह्मण के शाप से:—

२ ३ १

(चौ०) द्वंद्व युद्ध देखहु सकल

(अर्थ) १ सब लोग २ द्वंद्व युद्ध ३ देखो ।

२ १ ३ ४

(चौ०) भिरे उभौ वाली अति तर्जा

(अर्थ) १ दोनों २ भिड़गये ३ वाली ने बहुत धमकाया वा डाँटा ।

३ १ २
(दो०) मगन ध्यान रस दण्ड जुग

(अर्थ) १ ध्यान के रस में २ दो घड़ी ३ मगन रहे ।

५ ४ ३ १ २
(चौ०) प्रगट जुगल शशि तेहि के भाए

(अर्थ) १ उसके २ जान में ३ चन्द्रमा ४ दो ५ प्रगट होते हैं ।

३ १ २
(चौ०) सोहति सीय राम की जोरी

(अर्थ) १ सीताराम की २ जोड़ी ३ सोहती है ।

५ ४ ३ १ २
(चौ०) दीन्ह अशीश देखि भल जोटा

(अर्थ) १ अच्छी २ जोड़ी ३ देखकर ४ आशीष ५ दी ।

५ ४ १ २ ३
(चौ०) चले युगल मुनि पद शिरु नाई

(अर्थ) १ मुनि के चरणों में २ माथा ३ नवाके ४ दोनों ५ चले (अथवा, मुनि के दोनों चरणों को माथा नवा के चले ।)

अवतरण—ऊपर दिये प्रमाणों में रेखाङ्कित पद सब 'दो' के बोधक हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१५९) मानस में संख्यावाची 'दो' शब्द के लिए दुइ, दोउ, दोऊ, दुहुँ, दुहूँ, दु, दुहु, दूनौ, द्वंद्व, उभय, उभौ, जुग, जुगल, जोरी, जोटा और युगल—इतने रूप पाये जाते हैं ।

विवरण—कभी कभी–दौ, द्वौ, दुवौ, और दुनौ–भी मिलते हैं ।

———

(चौ०) चहुं[1] युग[2] तीनिकाल[3] तिहुंलोका

(अर्थ) १ चारों युग (और) २ तीनों काल (और) ३ तीनों लोक में—

(चौ०) जुग[4] सम[5] नृपहिं[1] गये[6] दिन[3] तीनी[2]

(अर्थ) १ राजा को २ तीन ३ दिन ४ युग के ५ समान ६ बीते।

(चौ०) जागत[1] होइ[4] तिहूंपुर[2] त्रासा[3]

(अर्थ) १ जागते ही २ तीनों लोक में ३ डर ४ होता है।

(चौ०) त्रिविधि तापत्रासक[1] तिमुहानी[2]

(अर्थ) १ तीन प्रकार के ताप (दुःख) को नाश करनेहारी २ और तीन मुँहवाली।

(चौ०) प्रीति[4] करहिं[5] जौं[1] तीनिउँ[2] भाई[3]

(अर्थ) १ यदि २ तीनों ३ भाई ४ प्रीति ५ करें।

(चौ०) भयउ[2] कोप[1] कंपेउ[4] त्रयलोका[3]

(अर्थ) १ क्रोध २ हुआ ३ तीनों लोक ४ काँप उठे।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'तीन' के बोधक हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१६०) मानस में 'तीन' के लिए—तीनि, तीनी, तीनिउँ, तिहुँ, तिहूँ, त्रि, ति, और त्रय ये शब्द काम में आये हैं।

विवरण—कहीं कहीं—तीन, तीनिउ और तिहु—भी मिलते हैं; परन्तु ये क्रम से—तीनि, तीनिउँ, और तिहुँ—के रूपान्तर हैं ।

---

३ १ २
(सो०) बन्दौं चारिउ वेद

(अर्थ) १ चारों २ वेदों की ३ वन्दना करता हूँ ।

२ १ ३ ४
(चौ०) राम भगत जग चारि प्रकारा

(अर्थ) १ जगत में २ राम के भक्त ३ चार ४ प्रकार के हैं ।

१ २ ३ ४
(चौ०) चहूँ चतुर कहँ नाम अधारा

(अर्थ) १ चारों २ चतुरों के लिए ३ नाम ४ आधार है ।

१ २ ३
(चौ०) चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ

(अर्थ) १ चारों युग २ चारों वेद में ३ नाम का प्रभाव—

१ २ ५ ४ ३
(चौ०) नृप समीप सोहहिं सुत चारी

(अर्थ) १ राजा के २ पास ३ चारों ४ बेटे ५ सोहते हैं ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'चार' के बोधक हैं, सो हम जानते हैं किः—

(१६१) मानस में 'चार' के लिए—चारिउ, चारि, चहूं, चहुँ, और चारी—ये शब्द काम में आये हैं ।

विवरण—कभी कभी 'चारयो' रूप भी मिलता है ।

---

४ ५ १ २ ३
(चौ०) पंच रचित यह अधम शरीरा

(अर्थ) १ यह २ अधम ३ शरीर ४ पाँच तत्वों से ५ बना है ।

३ २ ४ १
(दो०) घरी पाँच गई रात

(अर्थ) १ रात्रि २ पाँच ३ घड़ी ४ बीत गई ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'पाँच' के बोधक हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१६२) मानस में 'पाँच' के लिए 'पंच' और 'पाँच' कहे गये हैं ।

विवरण—मानस में इसके अधिक भेद नहीं पाये जाते परन्तु छन्द में–पँच, पाँचो, पांचौ, पाँचउ, पांचा—ये रूप भी हो सकते हैं।

१ ४ २ ३
(चौ०) तब जनमें षटबदन कुमारा

(अर्थ) १ तब २ छ मुखवाले ३ कुमार ४ जनमें ।

२ ३ १ ४
(चौ०) छरस असन अतिहेतु जेवाँए

(अर्थ) १ बड़े प्यार से २ छ रसों के ३ भोजन ४ कराये ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'छ' के स्थान में आये हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१६३) मानस में संख्यावाची 'छः' शब्द के लिये कहीं 'षट' और कहीं 'छ' कहा गया है।

(चौ०) तबहिं[1] सप्त[2] ऋषि शिवपहिं[3] आये[4]

(अर्थ) १ तभी २ सात ऋषि ३ शिव के पास ४ आये।

(दो०) सात[2] प्रदच्छिन[3] धाइ[1]

(अर्थ) १ दौड़ कर २ सात ३ परिक्रमाएँ कीं।

(चौ०) सुख[3] समेत संवत[2] दुइ साता[1]

(अर्थ) १ चौदह २ वर्ष ३ सुख से (बीतेंगे)।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'सात' के लिये आये हैं सो हम जानते हैं कि:—

(१६४) मानस में संख्यावाची 'सात' शब्द के लिये सप्त, सात, और साता—प्रयोग किये गये हैं।

(चौ०) आठै[1] नयन[2] जानि[3] पछताने[4]

(अर्थ) १ आठ ही २ आँखें ३ जान कर ४ पछताये।

इस प्रमाण में रेखाङ्कित 'आठै' पद आठ के लिये कहा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(१६५) मानस में 'आठ' के लिये 'आठै' कहा गया है।

विवरण—संभव है कि किसी पुस्तक में यह पाठ 'आठइ' हो; परंतु यह 'आठहो' का रूपान्तर है।

(छं०) नव[2] सप्त[3] साजे[1] सुन्दरी

(अर्थ) १ सुन्दरियाँ २ सोलह ३ सिंगार किये:—

इस प्रमाण से हम जानते हैं कि:—

(१६६) मानस में 'नव' के लिये 'नव' का ही प्रयोग हुआ है। संभव है कि 'नव' के बदले कहीं 'नौ' रूप भी होवे।

(चौ०) पर[3] अघ[4] सुनै[1] सहस दस[2] काना

(अर्थ) १ दस हज़ार २ कान से ३ दूसरे की बुराई ४ सुनता है।

(चौ०) जनु[1] पुर[2] दहुँ दिशि[4] लागि[3] दवारी

(अर्थ) १ मानों २ नगर की दसों ओर ३ दावाग्नि ४ लगी है।

(चौ०) जेइ[1] दव[3] दुसह[2] दशहुँ दिशि[4] दीन्हीं[5]

(अर्थ) १ जिसने २ दुःसह ३ दावाग्नि ४ दसों दिशा में ५ लगाई।

(चौ०) भूतल[3] परेउ[4] मुकुट[2] षटचारी[1]

(अर्थ) १ दसों २ मुकुट ३ धरती पर ४ गिर पड़े।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'दश' के लिये आये हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१६७) मानस में संख्यावाची 'दश' शब्द के लिये—दस, दशहुँ, दह वा दहुँ, और षटचारी—ये पद काम में आये हैं ।

(चौ०) चौदह बरिस राम बनवासी

(अर्थ) १ राम २ चौदह वर्ष तक ३ वन में वास करें ।

(दो०) बरष चारिदश वासु वन

(अर्थ) १ चौदह २ वर्ष तक ३ वन में ४ वास होवे ।

(चौ०) सुख समेत संवत दुइसाता

(अर्थ) १ चौदह २ वर्ष ३ सुख से (बीत जायँगे)—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'चौदह' के लिये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१६८) मानस में 'चौदह' के लिये—चौदह, चारिदश वा दशचारी, और दुइसाता—पद कहे गये हैं ।

(चौ०) नयन पंचदश अति प्रिय लागे

अर्थ १ पन्द्रह २ आँखें ३ बहुत प्यारी लगीं ।

१ २ ४ ३
(छं०) लघु जीवन संवत पंचदसा

(अर्थ) १ थोड़ा २ जीवन (जैसे) ३ पन्द्रह ४ वर्ष—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा के पद 'पन्द्रह' के लिये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१६९) मानस में 'पन्द्रह' के लिये 'पंचदश' और 'पंचदसा' कहा गया है।

---

१ २ ३
(चौ०) सोरह भाँति पूजि सनमाने

(अर्थ) १ सोलह प्रकार से २ पूज कर ३ सन्मान किया ।

५ ४ १ ३ २
(चौ०) सजि नवसप्त सकल दुति दामिनि

(अर्थ) १ सब २ बिजली सी ३ चमकवाली ४ सोलह ५ सिंगार करके ।

२ १ ३
(दो०) तारापति खोडस उगहिं

(अर्थ) १ सोलह २ चन्द्रमा ३ उगें—

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'सोलह' के लिये आये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१७०) मानस में 'सोलह' के लिये—सोरह, नवसप्त, और खोडस—पद काम में आये हैं।

---

२ ३ १ ४
(दो०) नयन कान तव बीस

(अर्थ) १ तेरे २ आँख (और) ३ कान ४ बीस हैं ।

४ ५ ३ २ १
(चौ०) भवन चलेउ निरखत भुज बीसा

(अर्थ) १ बीसों २ भुजाएं ३ देखता हुआ ४ घर को ५ चला ।

३ २ ४ १
(चौ०) साँचेहु मैं लबार भुज बीहा

(अर्थ) १ हे भुजबीहा (रावण) २ मैं ३ सचमुच ४ लबार हूँ ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखावाले पद 'बीस' के लिये हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१७१) मानस में 'बीस' के लिये—बीस, बीसा, और बीहा—ये शब्द आये हैं ।

---

१ २ ४ ३
(छं०) षट कंध शाखा पंचबीस

(अर्थ) १ छः २ स्कंध (और) ३ पचीस शाखाएँ—

२ १ ५ ४ ३
(चौ०) तुरग लाख रथ सहस पचीसा

(अर्थ) १ लाख २ घोड़े (और) ३ पचीस ४ हजार ५ रथ ।

इन प्रमाणों में रेखावाले पद 'पचीस' के लिये हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१७२) मानस में 'पच्चीस' के लिये 'पंचवीस' और 'पचीसा' कहा गया है ।

(चौ०) बीते[३] कलप[२] सात अरु बीसा[१]

(अर्थ) १ सात और बीस अर्थात् सत्ताइस २ कल्प ३ बीत गये ।

इस प्रमाण में 'सत्ताइस' के लिये 'सात अरु बीसा' पद आया है । मालूम हुआ कि—

(१७३) मानस में 'सत्ताइस' के लिये 'सात अरु बीसा' कहा है ।

(चौ०) तीस[२] तीर[३] रघुवीर[१] पवाँरे[४]

(अर्थ) १ श्रीरामचन्द्र ने २ तीस ३ तीर ४ फेंके ।

इस में देखा जाता है कि—

(१७४) मानस में 'तीस' के लिये 'तीस' ही कहा गया है ।

(दो०) छाड़े[३] शर[२] एकतीस[१]

(अर्थ) १ इकतीस २ बान ३ छोड़े ।

(चौ०) संवत[२] सोरह सै एकतीसा[१]

(अर्थ) १ सोलह सौ इकतीस के २ संवत् में—

इससे जाना जाता है कि—

(१७५) मानस में 'इकतीस' के लिये 'एकतीस' और 'एकतीसा' कहा गया है ।

---

१ २ ३ ४ ५
(छं०) शत शेष शारद निगम कवि

(अर्थ) १ सौ २ शेषनाग (और) ३ शारदा ४ वेद ५ कवि—

४ ३ २ १
(चौ०) करत सुरति सयवार दिये की

(अर्थ) १ दान को २ सौ वार ३ स्मरण ४ करते हैं ।

२ १
(चौ०) संवत सोरह सै एकतीसा

(अर्थ) १ सोलह सौ इकतीस के २ संवत् में—

इन उदाहरणों में रेखावाले पद 'सौ' के लिये हैं सो हम जानते हैं कि—

(१७६) मानस में 'सौ' के लिये—शत, सय और सै—कहे गये हैं । कहीं कहीं 'शत' के बदले 'सत' भी है ।

---

३ २ १
(दो०) वार सहस्र सहस्र नृप

(अर्थ) १ राजा ने २ हज़ार हज़ार ३ वार—

१ ३ २
(चौ०) सहस वदन वरनइ पर दोषा

(अर्थ) १ हज़ार मुहँ से २ पराया दोष ३ वर्णन करता है ।

इन प्रमाणों से विदित है कि:—

(१७७) मानस में 'हज़ार' के लिये 'सहस्र' और 'सहस पद' आते हैं ।

(चौ०) चारि[1] लच्च[2] वर धेनु[3] मँगाई

(अर्थ) १ चार लाख २ श्रेष्ठ गौवें ३ मँगाईं ।

(चौ०) तुरग[2] लाख[1] रथ[5] सहस[4] पचीसा[3]

(अर्थ) १ लाख २ घोड़े (और) ३ पच्चीस ४ हज़ार ५ रथ ।

इन प्रमाणों से हम जानते हैं कि—

(१७८) मानस में 'लाख' के लिये कभी 'लच्च' और कभी 'लाख' शब्द काम में आया है ।

विवरण—'लच्छ' भी हो सकता है ।

(दो०) यहि[1] सुख[2] ते सत कोटि[3] गुन

(अर्थ) १ इस २ सुख से ३ सौ करोड़ गुना ।

(चौ०) नहिं[4] निस्तार[3] कलप[2] शत कोरी[1]

(अर्थ) १ सौ करोड़ २ कल्प तक ३ निस्तार ४ नहीं ।

इन प्रमाणों से जाना जाता है कि:—

(१७९) मानस में 'करोड़' के लिये कहीं 'कोटि' और कहीं 'कोरी' पाठ आया है।

---

२ १ ३ ४
(चौ०) पदुम अठारह जूथप बन्दर

अर्थ १ अठारह २ पद्म ३ जूथपति ४ बन्दर हैं।

इस प्रममाण से हम जानते हैं कि:—

(१८०) मानस में 'अठारह' के लिये 'अठारह' और 'पद्म' के ये 'पदुम' कहा गया है।

संख्यावाची शब्दों से बने विशेषण

२ १ ३ ४
(चौ०) प्रथम बरात लगन ते आई

(अर्थ) १ बरात २ पहले ३ लग्न से ४ आई।

अवतरण—यहाँ प्रथम पद 'पहले' के बदले आया है। सो हम जानते हैं कि:—

(१८१) मानस में 'पहले' के बदले 'प्रथम' आया है।

---

५ ३ ४ १ २
(चौ०) मागौं दूसर वर कर जोरी

(अर्थ) १ हाथ २ जोड़ कर ३ दूसरा ४ वरदान ५ माँगती हूँ।

३ २ १ ४
(छं०) जनि बात दूसरि चालहीं

(अर्थ) १ दूसरी २ बात ३ मत चलाओ ।

२ १ ४ ५ ३
(चौ०) मोसम आजु धन्य नहिं दूजा

(अर्थ) १ आज २ मेरे समान ३ दूसरा ४ धन्य ५ नहीं है ।

५ ३ ४ २ १
(चौ०) बोली मधुर वचन तिय दूजी

(अर्थ) १ दूसरी २ स्त्री ३ मीठे ४ वचन ५ बोली ।

२ १ ४ ३
(चौ०) ध्यान प्रथमयुग मखविधि दूजे

(अर्थ) १ पहले युग (सतयुग में) २ ध्यान (और) ३ दूसरे में ४ यज्ञ की विधि ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'दूसरा' के अर्थ में आये हैं । सो हम जानते हैं कि:—

(१८२) मानस में 'दूसरा' के अर्थ में—दूसर, दूसरि, दूजा, दूजी, दूजे—ये पद आये हैं ।

विवरण—मुख्य रूप 'दूसर' और 'दूजा' को जानना चाहिये ।

---

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) तब शिव तीसर नयन उघारा

(अर्थ) १ तब २ शिवजी ने ३ तीसरा ४ नेत्र ५ खोला ।

२ ३ ४ १
(दो०) गुरु पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान

(अर्थ) १ निरभिमान २ गुरुचरण कमलों की सेवा ३ तीसरी ४ भक्ति है ।

२ १ ५ ४ ३
(चौ०) हमते भूप भेंट दिन तीजै

(अर्थ) १ हे राजा २ हम से ३ तीसरे ४ दिन ५ भेंट होगी।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'तीसरा' के अर्थ में आये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१८३) मानस में 'तीसरा' के लिये—तीसर, तीसरि, और तीजै—कहा गया है।

विवरण—'तीसर' और 'तीजा' रूप मुख्य हैं । तिसरा, तीसरी, तीसरे, तीजा, तीजी, तीजे,—ये रूप भी हो सकते हैं।

---

१ २ ३
(दो०) चौथि भगति मम गुनगन...

(अर्थ) १ चौथी २ भक्ति ३ मेरे गुनगन का......

१ २ ३ ४
(चौ०) चौथे दिवस अवध पुर आये

(अर्थ) १ चौथे २ दिन ३ अयोध्या नगर को ४ आये ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'चौथा' के अर्थ में हैं सो नियम हुआ कि:—

(१८४) मानस में 'चौथा के लिये 'चौथि' और 'चौथे' रूप मिलते हैं।

विवरण—चाहे 'चौथि' और 'चौथे' रूप हों, तो भी जानना चाहिये कि मानस में मुख्य शब्द 'चौथा' है । उक्त रूपों में जो

विकार दीखता है सो कारण से हुआ है । जैसे—'भक्ति' का विशेषण होने से 'चौथि' (स्त्रीलिंग) कहा गया है । ऐसे ही अन्यत्र भी समझने चाहियें ।

---

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) पंचम भजनु सो वेद प्रकाशा

(अर्थ) १ पाँचवाँ २ भजन है ३ वह ४ वेद में ५ प्रगट है ।

इससे विदित हुआ कि:—

(१८५) मानस में 'पाँचवाँ' के लिये 'पंचम' कहा गया है ।

---

१ २
(चौ०) छठ दम शील विरति बहु कर्मा

(अर्थ) १ छठी (भक्ति) २ इन्द्रियों का जीतना, सुशीलता और बहुत से कर्मों से वैराग्यः—

३ ४ १ ५ २
(चौ०) छठे श्रवण यह परत कहानी

(अर्थ) १ यह २ कहानी ३ छठे ४ कान में ५ पड़ते ही ।

अवतरण—इन प्रमाणों में 'छठवाँ' या 'छठा' के लिये रेखाङ्कित पद हैं । सो नियम हुआ कि:—

(१८६) मानस में 'छठा' वा छठवाँ, के लिये 'छठ' या 'छठे' पाठ आता है ।

---

१ २ ४ ३ ५
(चौ०) सातवँ सम मोहिमय जग देखा

(अर्थ) १ सातवीं (भक्ति में) २ समता (और) ३ जगत को ४ मुझ ५ मय देखे ।

इससे हमको विदित है कि—

(१८७) मानस में 'सातवां' के लिये 'सातवँ' आया है ।

---

२ १
(चौ०) आठवँ यथा लाभ संतोषा

(अर्थ) १ यथा लाभ में संतोष (जो मिल जाय उसी में संतुष्ट रहना) २ आठवीं (भक्ति) है ।

इससे जाना गया कि—

(१८८) मानस में 'आठवाँ' के लिये 'आठवँ' कहा गया है ।

---

४ १ २ ३
(चौ०) नवम सरल सब सन छल हीना

(अर्थ) १ सरलता (और) २ सब से ३ छल-रहित रहना ४ नवों है ।

इससे प्रकट है कि—

(१८९) मानस में 'नौवाँ' या 'नवाँ' के लिये 'नवम' आया है ।

---

३ ४ ५ १ २
(चौ०) नवधा भगति कह तोहि पाहीं

(अर्थ) १—२ तेरे प्रति ३ नव प्रकार की ४ भक्ति ५ कहता हूँ ।

इस प्रमाण से हम जानते हैं कि—

(१९०) मानस में 'नव प्रकार' के लिये 'नवधा' आया है । तदनुसार 'प्रकार' अर्थ बतलाने के लिये संख्यावाची शब्द से 'धा' जोड़ देते हैं ।

यथा—द्विधा, त्रिधा, चतुर्धा, आदि ।

विवरण—इस प्रकार के शब्द तत्सम होते हैं ।

(चौ०) तुम्हते[2] प्रेमु[4] राम[1] के दूना[3]

(अर्थ) १ रामचन्द्रजी के २ तुमसे ३ दूना ४ प्रेम है ।

(चौ०) कपि[1] तनु[2] कीन्ह[4] दुगुन[3] विस्तारा

(अर्थ) १ कपि ने २ शरीर को ३ दूने विस्तार का ४ किया ।

(चौ०) तासु[2] दून[3] कपि[1] रूप[4] देखावा[5]

(अर्थ) १ कपि ने २ उसका ३ दूना ४ रूप ५ दिखाया ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'दूना' के लिये हैं । सो नियम हुआ कि—

(१९१) मानस में 'दूना' के लिये 'दूना' 'दून' या 'दुगुन' कहा गया है ।

विवरण—ये सब 'द्विगुण' के तद्भव हैं ।

(चौ०) अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ

(अर्थ) १ आधी रात २ गई ३ कपि ४ नहीं ५ आया ।

(चौ०) अरध तजहिं बुध सर्बस जाता

(अर्थ) १ पंडित लोग २ सर्बस ३ जाता (देख) ४ आधा ५ छोड़ देते हैं ।

(चौ०) आधा कटक कपिन्ह संहारा

(अर्थ) १ बन्दरों ने २ आधी ३ सेना ४ नाश कर डाली ।

(चौ०) उभय भाग आधे कर कीन्हा

(अर्थ) १ आधे के २ दो भाग ३ किये ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में 'आधा' के लिये रेखाङ्कित पद हैं । मालूम हुआ कि:—

(१९२) मानस में 'आधा' के लिये 'अर्ध' 'अरध' और 'आधा' रूप पाये जाते हैं ।

विवरण—'आधे कर' यह 'आधा' का सविभक्तिक रूप है; नियमानुसार 'आ' को 'ए' हो गया है । इसके शेष रूप वर्ण विचार के नियमानुसार सिद्ध हो जाते हैं ।

(चौ०) विधि ते डेवढ़ लोचन लाहू

(अर्थ) १ आँखों का लाभ २ ब्रह्मा से ३ ड्यौढ़ा हुआ ।

इसमें 'डेवढ़े' पद 'डेढ़ गुने' के लिये आया है। सो हम जानते हैं कि:—

(१९३) मानस में 'ड्यौढ़े' या 'डेढ़गुने' के लिये 'डेवढ़े' आया है।

विवरण—संभव है कि किसी प्रति में 'ड्यौढ़े' पाठ हो।

(चौ०) कनक बिन्दु[२] दुइचारिक[१] पाये[३]

(अर्थ) १ दो चार एक २ सोने के बोर ३ पाये।

(चौ०) सुनि[१] मन[२] मुदित[३] पचासक[४] आये[५]

(अर्थ) १ सुन कर २ मन में ३ प्रसन्न ४ लगभग पचास ५ आये।

(चौ०) साथ[३] किरात[२] छसातक[१] दीन्हें[४]

(अर्थ) १ छः सात एक २ कोल भीलों को ३ संग में ४ दिया।

अवतरण—ऊपर के रेखाङ्कित पद 'अटकल' के बोधक हैं। सो नियम होता है कि:—

(१९४) मानस में 'अटकल' वा 'लगभग' अर्थ जतलाने के लिये संख्यावाची शब्द से परे 'एक' अथवा (उच्चारण की सुगमता के लिये) केवल 'क' जोड़ देते हैं। यथा—'सत एक' 'बहुतक' 'केतिक' आदि में।

---

४ २ १ ३

(चौ०) जानि राम वनवास एकाकी

(अर्थ) १ वनवास में २ राम को ३ अकेला जानकर—

इसमें हम देखते हैं कि—

(१८५) मानस में 'अकेला' के लिये 'एकाकी' आया है, जो संस्कृत होने से तत्सम है।

---

५ ४ ३ २ १

(चौ०) होइहि सत्य गये दिन चारी

(अर्थ) १ चार २ दिन ३ बीतने पर ४ सत्य ५ होगा।

इस चौपाई में 'चारी' पद को देख कर हम जानते हैं कि:—

(१८६) मानस में कहीं कहीं 'अनिश्चय' का अर्थ बतलाने के लिये लोक-व्यवहार के समान संख्यावाची शब्द कहे गये हैं। जैसे ऊपर की चौपाई में 'चारी' पद है। इसका अर्थ 'गिनती में चार, दिन' ऐसा नहीं, किन्तु वैसा है जैसा कि लोग अनिश्चय में कह देते हैं कि "अमुक बात चार दिन में होगी" जब लोग ऐसा कहते हैं तब उनके मन का भाव यह रहता है कि कुछ दिनों में यह बात होगी।

ऐसे ही 'दुइचार' 'दसपाँच' आदि और भी प्रयोग मानस में अनिश्चयार्थ के द्योतक पाये जाते हैं। जैसे—मिलि दस पाँच राम पहँ जाहीं।

इति विश्वेश्वरदत्तविरचिते मानसप्रबोधव्याकरणे संख्यावाची शब्दनिरूपणो नाम पंचमोऽध्यायः।

छठा अध्याय

अव्यय

२ ३ ४ ५
(दो०) जेहि इमि गावहिं वेद बुध

(अर्थ) १ वेद और पंडित २ जिसको ३ ऐसे ४ कहते हैं।

१ २ ३ ४ ५
(दो०) जो नृप तनय तो ब्रह्म किमि

(अर्थ) १ यदि २ राजपुत्र हैं ३ तो ४ ब्रह्म ५ कैसे हैं।

२ १ ४ ३
(चौ०) जिमिजिमि तापस कथइ उदासा

(अर्थ) १ तपस्वी २ जैसे जैसे ३ उदासी की बातें ४ कहता है।

१ २ ४ ३
(चौ०) तिमितिमि नृपहिं उपजु विश्वासा

(अर्थ) १ तैसे तैसे २ राजा को ३ विश्वास ४ उपजता है।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद ऐसे हैं कि जो लोक-भाषा में नहीं बोले जाते, केवल छन्द में इनका प्रयोग देखा जाता है।

उदाहरण			अर्थ
(१) इमि,	...	...	(१) ऐसे,
(२) किमि,	...	...	(२) कैसे,
(३) जिमि,	...	...	(३) जैसे,
(४) तिमि।	...	...	(४) तैसे।

ये सब क्रियाविशेषण का काम देते हैं। सो नियम हुआ कि:—

(१६७) मानस में ऐसे, कैसे, जैसे, तैसे के अर्थ में क्रम से—इमि, किमि, जिमि, और तिमि—पद आये हैं।

(चौ०) यथा[1] दरिद्र[2] विबुध[3] तरु[4] जाई

(अर्थ) १ जैसे २ दरिद्र ३ कल्पवृत्त के पास ४ जाकर—

(चौ०) तथा[1] हृदय[3] मम[2] संशय[4] होई[5]

(अर्थ) १ वैसेही २ मेरे ३ हृदय में ४ सन्देह ५ होता है।

(चौ०) हरि[1] तजि[2] किमपि[3] प्रयोजन[4] नाहीं[5]

(अर्थ) १ भगवान को २ छोड़कर ३ कुछ भी ४ प्रयोजन ५ नहीं है।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित शब्द—यथा, तथा, किमपि—संस्कृत के हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(१९८) मानस में कहीं कहीं संस्कृत के अव्यय पद काम में आये हैं।

विवरण—यद्यपि नियम में अव्यय कहा गया है क्यों कि अव्यय का प्रकरण है, तो भी विद्यार्थी को जानना चाहिये कि संज्ञा, क्रिया और अव्यय ये तीनों कभी कभी मानस में शुद्ध संस्कृत के पाये जाते हैं। जैसे, संज्ञा—हंस, वंश, अवतंस, आदि।

क्रिया—यथा 'सब संत सुखी विचरंति मही' आदि। अव्यय का उदाहरण ऊपर दिया ही गया है।

(चौ०) इहाँ[1] बसत[2] बीते[4] बहु काला[3]

(अर्थ) १ यहाँ २ रहते ३ बहुत काल ४ बीत गया।

अवतरण—इस चौपाई में 'इहाँ' पद हमारा लक्ष्य है। इसका संस्कृत रूप 'इह' है और लोकभाषा में 'यहाँ' है। सो नियम हुआ कि:—

(१९९) मानस में 'यहाँ' के बदले 'इहाँ' लिखा गया है।

विवरण—कहीं कहीं 'इहा' पाठ भी मिलता है, 'इहा' वा 'इहाँ' 'इह' का तद्भव है और प्राकृत है।

(चौ० उहाँ[1] निशाचर[2] रहहिं[4] सशंका[3]

(अर्थ) १ वहाँ २ राक्षस ३ सशंक (डरते हुए वा चिंतित) ४ रहते हैं। इससे हम जानते हैं कि:—

(२००) मानस में जैसे 'यहाँ' के लिए 'इहाँ' होता है वैसे ही 'वहाँ' के अर्थ में 'उहाँ' पाया जाता है ।

---

४ ५ ३ २ १
(चौ०) गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक

(अर्थ) १ जिस खानि का २ जो ३ जहाँ ४ गुप्त वा ५ प्रगट है।

१ ३ ४ २ ५
(चौ०) जब जेहि जतन जहाँ जो पाई

(अर्थ) १ जब २ जो ३ जिस जतन से ४ जहाँ ५ पाई है।

५ ४ १ ३ २
(चौ०) गई सती जहुँ प्रभु सुख धामा

(अर्थ) १ जहाँ २ सुख के धाम ३ प्रभु थे ४ सती (वहाँ) ५ गई।

१ ३ २
(चौ०) गोदावरि तट आश्रम जहवाँ

(अर्थ) १ गोदावरी के किनारे २ जहाँ ३ आश्रम है।

अवतरण—ऊपर की चौपाइयों में रेखा लगे पद 'जहाँ' के लिये कहे गये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२०१) मानस में 'जहाँ' के अर्थ में जहाँ, जहँ, जहुँ, जहवाँ—इतने रूप काम में आये हैं।

विवरण—कहीं कहीं निरनुनासिक पाठ भी पाया जाता है। जैसे 'जहँ' के बदले 'जह' इत्यादि।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) तहाँ वेद अस कारन राखा

(अर्थ) १ वहाँ २ वेद ने ३ ऐसा ४ कारण ५ रक्खा है।

२ ४ ५ १ ३
(चौ०) सती कीह्न चह तहउँ दुराऊ

(अर्थ) १ वहाँ भी २ सती ३ कपट ४ किया ५ चाहती है।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) जहँ चितवहिं तहँ प्रभु आसीना

(अर्थ) १ जहाँ २ देखती हैं ३ तहाँ ४ प्रभु ५ बैठे हैं।

१ २ ३ ४
(चौ०) बहुरि मातु तहवाँ चलि आई

(अर्थ) १ फिर २ माता ३ तहाँ ४ चली आई।

२ १ ४ ३
(छं०) जाब जहँ पाउब तहीं

(अर्थ) १ जहाँ २ जाऊँगी ३ वहीं ४ पाऊँगी।

१ २ ३ ४
(चौ०) तहहुँ सती शंकर हि विवाही

(अर्थ) १ वहाँ भी २ सती को ३ शंकर ही ने ४ वियाहा था।

१ २ ४ ३ ५
(चौ०) जहाँ जाइ मनु तहँ लोभाई

(अर्थ) १ जहां २ जाय ३ वहीं ४ मन ५ लुभाता है।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'तहाँ' के बदले आये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(२०२) मानस में 'तहाँ' के अर्थ में तहाँ, तहउँ, तहँ, तहवाँ, तहीं, तहहुँ, तहँ पाये जाते हैं।

विवरण—कहीं कहीं 'तहँ' का रूपान्तर 'तहँइ' भी मिलता है। फिर कहीं कहीं निरनुनासिक पाठ भी पाया जाता है।

१ २ ४ ३
(चौ०) कहँ रघुपति कर चरित अपारा

(अर्थ) १ कहाँ २ रामचन्द्रजी का ३ अपार ४ चरित्र

२ १ ४ ३
(चौ०) कहेउ बहोरि कहाँ वृषकेतू

(अर्थ) १ फिर २ कहा (कि) ३ महादेव जी ४ कहाँ हैं।

इससे ज्ञात हुआ कि:—

(२०३) मानस में 'कहाँ' के लिये कहीं तो 'कहँ' और कहीं 'कहाँ' कहा गया है।

विवरण—निरनुनासिक और सानुनासिक के भेद से दो के चार रूप हो जाते हैं।

---

१ २ ४ ३
(दो०) तुलसी कहूँ न राम से

(अर्थ) १ हे तुलसी २ कहीं ३ राम के समान ४ नहीं—

३ ४ ५ १ २
(चौ०) कतहुँ न दीख शंभु कर भागा

(अर्थ) १ शिव जी का २ भाग (हिस्सा) ३ कहीं ४ नहीं ५ देखा।

इन प्रमाणों से हम जानते हैं कि:—

(२०४) मानस में 'कहाँ' के अर्थ में 'कहूँ' वा 'कतहु' रूप मिलता है।

विवरण—निरनुनासिक सानुनासिक के और 'उ' के ह्रस्व दीर्घ के भेद से इतने रूप हो सकते हैं। कहुँ, कहु, कहूँ, कतहु, कतहुँ, कतहू, कतहूँ, और 'कहीं' 'कहं' भी हो सकते हैं।

(चौ०) अब मैं जनम शंभु हित हारा

(अर्थ) १ अब २ मैंने ३ महादेव के लिये ४ जन्म ५ हारा है।

(चौ०) अबहिं मातु मैं जाउँ लिवाई

(अर्थ) १ हे माता २ मैं ३ अभी ४-५ लिवाजाऊँ।

(चौ०) अजहूँ मानहु कहा हमारा

(अर्थ) १ हमारा २ कहना ३ अब भी ४ मानो।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'अब' के लिये आये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२०५) मानस में 'अब' के लिये अब, अबहिं, और अजहूँ—ये रूप काम में आये हैं।

विवरण—'अब' और 'आज' ये दोनों संस्कृत 'अद्य' के तद्भव हैं। इनमें कहीं 'हीं' वा 'हिं' अथवा 'हूँ' वा 'हुँ' जोड़ दिया गया है। जहाँ 'अभी' का अर्थ इष्ट था वहाँ 'हिं' वा 'हीं' जोड़ा गया है और जहाँ 'अब भी' का अर्थ इष्ट है वहाँ 'हुँ' वा 'हूँ' जोड़ दिया गया है। फिर 'हिं' वा 'हुँ' कभी कभी निरनुनासिक भी मिलता है।

———

१ २ ३ ४
(चौ०) जब यदुवंश कृष्ण अवतारा

(अर्थ) १ जब २ यदुवंश में ३ कृष्ण का ४ अवतार होगा।

१ २ ३ ४
(चौ०) रावन जबहिं विभीषण त्यागा

(अर्थ) १ रावण ने २ जब ३ विभीषण को ४ त्याग दिया।

इन प्रमाणों में 'जब' के रूप मिलते हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(२०६) मानस में 'जब' के लिये 'जब' और 'जबहिं' रूप मिलते हैं।

विवरण—इस की शेष बातें 'अब' के समान ही जाननी चाहियें। इसका एक असाधारण रूप और भी मिलता है, और वह रूप 'जहिया' है। यह संस्कृत 'यदाहि' का तद्भव है; जैसे—भुज बल विश्व जितब तुम्ह जहिया।

---

१ २ ५ ३ ४
(सो०) तब मैं होब तुम्हार सुत

(अर्थ) १ तब २ मैं ३ तुम्हारा ४ बेटा ५ होऊँगा।

५ ३ ४ १ २
(चौ०) भयउ विभव विनु तबहिं अभागा

(अर्थ) १ तभी २ अभागा ३–४ विभव-रहित ५ हुआ।

३ ४ ५ २ १
(चौ०) तबहुँ न बोलु चेरि बड़ि पापिनि

(अर्थ) १ बड़ी पापिनी २ चेरी ३ तब भी ४ न ५ बोली।

इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'तब' के लिये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(२०७) मानस में 'तब' के लिये तब, तबहिं, तबहुँ—रूप पाये जाते हैं।

विवरण—इसकी शेष बातें भी 'अब' के समान ही हैं। और असाधारण रूप इसका 'तहिया' होता है। यथा—धरिहहिं विष्णु मनुज तनु तहिया।

---

१ २ ३ ५ ४
(चौ०) सकल कहहिं कब होइहि काली

(अर्थ) १ सब २ कहते हैं (कि) ३ कब ४ कल ५ होगा।

१ २ ४ ३
(दो० कबहिं बुलाई लगाइ हिय

(अर्थ) १ कब २ बुला कर (और) ३ हृदय से ४ लगा कर—

२ ४ ३ ५ १
(चौ०) कबहुँ नयन मम शीतल ताता

(अर्थ) १ हे प्यारे २ कभी ३ मेरे ४ नेत्र ५ ठंडे होंगे।

इन प्रमाणों में रेखा लगे पद 'कब' के लिये आये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(२०८) मानस में 'कब' के लिये कब, कबहिं, और कबहुँ रूप पाये जाते हैं।

विवरण—शेष बातें पूर्ववत् हैं। यद्यपि मानस में इसका असाधारण रूप नहीं पाया जाता परन्तु 'कहिया' होता है।

---

२ १ ३ ४ ५
(चौ०) उपजहिँ अनत अनत छवि लहहीं

(अर्थ) १ और कहीं (तो) २ उपजते हैं (और) ३ और ही कहीं ४ शोभा ५ पाते हैं ।

इसमें 'अनत' पद 'और कहीं' (दूसरी जगह) के बदले कहा गया है । सो नियम हुआ कि:—

(२०६) मानस में 'और कहीं' के लिये 'अनत' पद कहा गया है ।

विवरण—यह 'अन्यत्र' संस्कृत का तद्भव है ।

---

१ २ ३ ४ ५

(चौ०) उत रावन इत राम दोहाई

(अर्थ) १ उधर २ रावन की ३ इधर ४ राम की ५ दुहाई ।

इसमें हम देखते हैं कि:—

(२१०) मानस में 'इधर' के लिये 'इत' और 'उधर' के लिये 'उत' कहा गया है ।

१ २ ५ ३ ४

(चौ०) जौं रघुबीर होत सुधि पाई

(अर्थ) १ यदि २ रामचन्द्र जी ने ३ सुधि ४-५ पाई होती ।

१ ३ २

(चौ०) तौ भगवान सकल उरबासी

(अर्थ) १ तो २ सब के हृदय में बसने हारे ३ भगवान—

इन प्रमाणों में हम देखते हैं कि:—

(२११) मानस में 'जो' 'तो' के लिये प्रायः 'जौं'—'तौं'—कहीं निरनुनासिक कहीं सानुनासिक कहा गया है ।

विवरण—'प्रायः' कहने से तात्पर्य यह है कि कहीं कहीं जो—'तो' ऐसा भी रूप मिलता है। फिर मानस में कभी कभी 'जौंपै' रूप भी मिलता है उसका कुछ दूसरा अर्थ नहीं, केवल 'जो' का ही अर्थ समझना चाहिये।

जैसे—जौं पै प्रिय-वियोग विधि कीन्हा। इत्यादि।

(चौ०) जदपि[२] सुनहि[५] मुनि[१] अटपट[३] बानी[४]

(अर्थ) १ मुनि २ यद्यपि ३ गूढ़ ४ बातें ५ सुनते हैं।

(दो०) जद्यपि[१] लघुता[३] राम कहुँ[२]

(अर्थ) १ यद्यपि २ राम को ३ छोटाई है।

(दो०) तदपि[३] कठिन[४] दशकंठ[१] सुनु[२]

(अर्थ) १ हे रावण २ सुन ३ तो भी ४ कठिन............

इनमें हम—जदपि, जद्यपि, और तदपि—पद देखते हैं जो क्रम से 'यद्यपि' और 'तथापि' के तद्भव हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२१२) मानस में 'यद्यपि' के लिये कहीं तो 'जदपि' और कहीं जद्यपि कहा गया है; और 'तथापि' के लिये 'तदपि' आया है।

विवरण—'तथापि' का 'तदपि' रूप नियम विरुद्ध है। परन्तु 'जदपि' के साहचर्य से प्रचलित हो गया समझना चाहिये। कहीं कहीं 'यद्यपि' भी पाया जाता है।

(दो०) नाहित[३] हम[४] कहँ[२] सुनहु[१] सखि

(अर्थ) १ हे सखि २ सुनो ३ नहीं तो ४ हम को............

इसमें हम 'त' अव्यय पाते हैं जो संस्कृत 'तु' और हिन्दी 'तो' के अर्थ में आया है। सो नियम हुआ कि:—

(२१३) मानस में कभी कभी 'तो' के बदले 'त' कहा गया है।

(चौ०) नतु[1 2] यहि[5] काटि[4] कुठार[3] कठोरे

(अर्थ) १ नहीं तो २ इसे ३ कठिन ४ कुल्हाड़े से ५ काट कर।

(चौ०) वरौं[2] शंभु[1] नत[3] रहौं[5] कुआँरी[4]

(अर्थ) १ महादेवजी को २ वरूँगी ३ नहीं तो ४ कुआँरी ५ रहूँगी ।

इनमें हम 'नतु' और 'नत' पाठ पाते हैं जो 'नहीं तो' के अर्थ में आया है। सो हम जानते हैं कि:—

(२१४) मानस में 'नहीं तो' के लिये कहीं तो 'नतु' और कहीं 'नत' कहा गया है ।

(चौ०) लोकहु[1] वेद[2] न[5] आन[3] उपाऊ[4]

(अर्थ) १ लोक में २ वेद में ३ दूसरा ४ उपाय ५ नहीं ।

(दो०) हित[2] अनहित[3] नहिं[4] कोउ[1]

(अर्थ) १ कोई २ मित्र ३ शत्रु ४ नहीं ।

२ १ ३
(चौ०) निज बुधि बल भरोस मोहिं नाहीं

(अर्थ) १ मुझे २ अपनी बुद्धि के बल का भरोसा ३ नहीं है।

१ ३ ५ ४ २
(चौ०) सुनि आचरजु करै जनि कोई

(अर्थ) १ सुन कर २ कोई ३ आश्चर्य ४ न ५ करे।

३ १ ४ ५ २
(चौ०) प्रौढि सुजन जन जानहिं जन की

(अर्थ) १ सज्जन २ दास का ३ प्रौढ़वाद (ढिठाई से बोलना) ४ न ५ जाने। इन ऊपर के प्रमाणों में हम देखते हैं कि रेखाङ्कित पद निषेधार्थक हैं। सो नियम होता है कि:—

(२१५) मानस में निषेध करने के लिये—न, नहिं, नाहीं, जनि, और जन—काम में आये हैं।

विवरण—'नहिं' 'नाहीं' कभी कभी निरनुनासिक भी मिलते हैं। 'ना' भी हो सकता है; और 'जिन' भी हो सकता है।

---

४ ५ १ २ ३
(चौ०) नाहि न रामु राज के भूखे

(अर्थ) १ राम २ राज्य के ३ भूखे ४ नहीं ५ हैं।

इसमें हम देखते हैं कि 'न' 'है' के लिये आया है। सो नियम होता है कि:—

(२१६) मानस में कभी कभी 'न' 'है' के अर्थ में आया है।

१ ४ २ ३ ५
(चौ०) तौ किन जाइ परिच्छा लेहू

(अर्थ) १ तो २ जाकर ३ परीक्षा ४ 'क्यों नहीं' ५ लेती। इसमें हम देखते हैं कि 'क्यों नहीं' के पलटे 'किन' कहा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२१७) मानस में 'क्यों नहीं' के लिये कभी कभी 'किन' कहा गया है।

(दो०) जुगुति[1] बेधि[2] पुनि[3] पोहि[4] अहि

(अर्थ) १ जुगुति से २ वेध कर ३ फिर ४ पोहा जाय।

(चौ०) बहुरि[1] बन्दि[4] खल[3] गन सति[2] भाए

(अर्थ) १ फिर २ सच्चे भाव से ३ खलों की ४ वन्दना करता हूँ।

(चौ०) प्रनवौं[3] पुर[2] नर नारि बहोरी[1]

(अर्थ) १ फिर २ नगर के स्त्री-पुरुषों को ३ प्रणाम करता हूँ।

अवतरण—इनमें रेखाङ्कित पद 'फिर' के बोधक हैं। सो नियम होता है कि:—

(२१८) मानस में 'फिर' अव्यय के लिये—पुनि, बहुरि, बहोरी—पद आते हैं।

विवरण—'पुन' भी हो सकता है।

---

२ १ ३ ५ ४
(चौ०) प्रभु परन्तु सुठि होत ढिठाई

(अर्थ) १ परन्तु २ हे प्रभु ३ बड़ी ४ ढिठाई ५ होती है।

३ १ ४ २
(चौ०) दुराराध्य पै अहहिं महेशू

(अर्थ) १ परन्तु २ महादेवजी ३ दुराराध्य (जिसकी आराधना कठिन हो) ४ हैं । इनमें 'परन्तु' और 'पै' हमारे लक्ष्य हैं। सो नियम होता है कि:—

(२१९) मानस में 'परन्तु' के अर्थ में एक तो वह आप, और दूसरा 'पै' काम में आया है।

विवरण—'पर' भी हो सकता है। यदि कहीं 'पइ' मिले तो उसे 'पै' का रूपान्तर जानना चाहिये।

---

२ ४ ५ १ ३
(चौ०) नैहर जनम भरब बरु जाई

(अर्थ) १ बरन (बल्कि) २ मायके ३ जाकर ४ जनम ५ बिताऊँगी।

२ ३ १ ४
(चौ०) तिमिर तरुन तरनिहि मकु गिलई

(अर्थ) १ बल्कि २ अंधकार ३ दुपहर के सूर्य को ४ निगल जावे।

इनमें रेखाङ्कित पद 'बरु' और 'मकु' हैं जो 'बरन्' के अर्थ में आये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२२०) मानस में 'बरन्' के अर्थ में 'बरु' और 'मकु' आये हैं।

विवरण—अन्यत्र इसी के लिये 'बरुक' और 'बलुक' भी होते हैं।

---

२ १ ३
(दो०) निरगुन ते एहि भांति बड़

(अर्थ) १ इस प्रकार २ निरगुन से ३ बड़ा है।

१ २ ३
(दो०) नाम प्रभाउ अपार

(अर्थ) १ नाम का २ प्रभाव ३ अपार है।

३ २ १ ४ ५
(चौ०) अनहित तोर प्रिया केहि कीन्हा

(अर्थ) १ हे प्यारी २ तेरा ३ अनहित ४ किसने ५ किया ?

(दो०) रहित समस्त विकार

(अर्थ) सब विकार से रहित हो—

४ ३ १ २
(चौ०) मरु गर काटि निलज कुल घाती

(अर्थ) १ रे निर्लज्ज २ कुलघाती ३ गला काट कर ४ मर।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) तव प्रभु नारि विरह बलहीना

(अर्थ) १ तेरा २ प्रभु ३ स्त्री के ४ विरह से ५ बलहीन है।

४ ३ २ १
(चौ०) तरहिं न विनु सेये मम स्वामी

(अर्थ) १ मेरे प्रभु की २ सेवा किये बिना ३ नहीं ४ तरेंगे।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद हमारे लक्ष्य हैं; जैसे—

(१) निरगुन (२) अपारा (३) अनहित ४ रहित समस्त विकार (५) निलज (६) बलहीना (७) विनुसेये। ये पद सामासिक हैं। अर्थात् दो या अधिक शब्द मिल कर एक शब्द बन गया है। जैसे 'निरगुन' इसमें एक पद 'निर' और दूसरा 'गुन' है। इन दोनों के मेल से 'निरगुन' पद बना है। इसका अर्थ है 'बिना गुण का' अर्थात् जिसमें कोई गुण न हो, ऐसे ही 'अपारा' आदि भी हैं। इन्हें देख कर हम यह नियम निकालते हैं कि:—

(२२१) मानस में जिस किसी शब्द से—निर, अन, अ, रहित, नि, हीन और बिनु वा विन अथवा विना इनमें से कोई जुड़ा हो तो उसका अर्थ अभाव-सूचक हो जाता है।

जैसे 'निलज' इसका अर्थ है 'लज्जा न रखने वाला'। ऐसे ही औरों को भी समझना चाहिये। ऊपर कहे हुओं में से 'नि' ऐसा अव्यय है कि इसका दूसरा अर्थ भी कभी कभी पाया जाता है। जैसे—'निदान' यहाँ 'नि' का अर्थ अभाव सूचक नहीं है किन्तु 'निश्चय' वा 'अन्त' सूचक है।

(चौ०) भयेउ[२] तेजहित[१] श्री[४] सब[३] गई[५]

(अर्थ) १ तेजहत (नष्ट तेज) २ हो गया (और) ३ सब ४ शोभा ५ उड़ गई।

इसमें 'तेजहत' पद आया है, इसका अर्थ है—'तेज मारा गया वा नष्ट हुआ'। सो जानना चाहिए कि:—

(२२२) मानस में जहाँ कहीं ऐसा पद मिले जिससे 'हत' जुड़ा हो, तो उसका अर्थ यह समझना चाहिए कि वह नष्ट हुआ; जैसे 'श्रीहत' 'हतभाग' आदि में।

(दो०) अति उतंग तरु शैल गन

(अर्थ) बहुत ही ऊँचे वृक्ष पहाड़ के समूह—

यहाँ 'अति' शब्द आया है जिसका अर्थ 'बहुत ही' वा 'अतिशय' है। सो जाना गया कि—

(२२३) मानस में जहाँ कहीं 'अति' जुड़ा हुआ मिले वहाँ 'अतिशय' का अर्थ जानना चाहिए।

(चौ०) भूरि[१] कृपा[३] प्रभु[४] दूरि[२] सनेही

(अर्थ) १ अतिकृपालु २ प्रेमी ३ प्रभु ४ दूर हैं।

(चौ०) निर्भर[३] प्रेम[३] मगन[२] मुनि[१] ज्ञानी

(अर्थ) १ ज्ञानी २ मुनि ३ अत्यन्त प्रेम में मगन हैं।

इनमें 'भूरि' और 'निर्भर' पद आये हैं जिनका अर्थ 'अत्यंत' है। सो नियम हुआ कि:—

(२२४) मानस में 'निर्भर' और 'भूरि' पद 'अत्यंत' के बोधक हैं।

---

४ २ ३ १
(चौ०) वादि सुधादि असन जग माहीं

(अर्थ) १ जगत में २ अमृत आदि ३ भोजन ४ व्यर्थ हैं ।

१ ४ २ ५ ३
(चौ०) तात जाय जिय करहु गलानी

(अर्थ) १ हे तात २ मन में ३ ग्लानि ४ व्यर्थ ५ करते हो।

१ ३ ५ ४ २
(चौ०) तात कुतर्क करहु जनि जाए

(अर्थ) १ हे भाई २ व्यर्थ ३ कुतर्क ४ मत ५ करो।

इन चौपाइयों में वादि, जाय, और जाए पद हैं, और इनका अर्थ 'व्यर्थ' है। सो नियम हुआ कि:—

(२२५) मानस में जहाँ कहीं वादि, जाय, वा जाए पद मिले तो उसका अर्थ 'व्यर्थ' समझो।

विवरण—'जाय' वा 'जाए' अरबी 'जाय:' का तद्भव है।

१ २ ५ ३ ४
(दो०) जौ हम निदरहिं विप्र वदि

(अर्थ) १ यदि २ हम ३ ब्राह्मण ४ बोलकर ५ अनादर करें।

इसमें 'वदि' पद आया है। यह संस्कृत 'वद' धातु से हिन्दी का 'इ' प्रत्यय जोड़ कर पूर्वकालिक क्रिया बना ली गई है, और इसका अर्थ है 'बोल कर' जहाँ तक हम जानते हैं यह क्रिया मानस में केवल एक वार आई है।

इति विश्वेश्वरदत्तविरचिते मानसप्रबोधव्याकरणे
अव्ययनिरूपणो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥

सातवाँ अध्याय

(क्रिया के विषय में)

क्रिया के विषय में हम इस ग्रन्थ में वही बातें बतलायँगे जो मानस में विशेष रूप से आती हैं। जिन बातों को हम 'भाषा-तत्व-प्रकाश' में समझा चुके हैं उन्हें हम यहाँ न लिखेंगे।

प्रथम क्रियार्थक संज्ञा वा क्रिया का साधारण रूप—

(चौ०) अवसि[३] देखिये[४] देखन[१] जोगू[२]

(अर्थ) १ देखने २ योग्य हैं ३ अवश्य ४ देखिए।

(चौ०) देखन[४] बाग[३] कुँवर[२] दोउ[१] आये[५]

(अर्थ) १ दोनों २ कुमार ३ बाग ४ देखने ५ आये हैं।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में दोनों चौपाइयों में 'देखन' ऐसा रूप आया है, और यह रूप 'देखना' के बदले में आया है। सो नियम हुआ कि:—

(२२६) मानस में क्रियार्थक संज्ञा ह्रस्वान्त होती है, अर्थात् धातु के साथ ह्रस्व 'न' जुड़ कर आती है।

(चौ०) वैषानस[2] सोइ[1] शोचइ[3] जोगू[4]

(अर्थ) १ वही २ वैखानस (वानप्रस्थ) ३ सोचने के ४ योग्य है ।

(चौ०) फोरइ[3] जोगु[4] कपारु[2] अभागा[1]

(अर्थ) १ अभागा २ कपार ३ फोड़ने ४ योग्य है ।

(चौ०) जारइ[3] जोगु[4] सुभाउ[2] हमारा[1]

(अर्थ) १ हमारा २ स्वभाव ३ जलाने के ४ योग्य—

(चौ०) जियइ[1] मरइ[2] भल[4] भूपति[3] जाना[5]

(अर्थ) १ जीना २ मरना ३ राजा ने ४ अच्छा ५ जाना ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद हमारे लक्ष्य हैं, और वे ये हैं:—

(१) शोचइ (२) फोरइ (३) जारइ (४) जिअइ (५) मरइ । ये सब क्रियार्थक संज्ञा के अर्थ में आये हैं । यहाँ हम देखते हैं कि क्रियार्थक संज्ञा के 'न' के स्थान में 'इ' करके लिखा गया है । सो हम जानते हैं कि:—

(२२७) मानस में कहीं कहीं क्रियार्थक संज्ञा के 'न' के स्थान में 'इ' कर दी गई है ।

विवरण—दीर्घ ईकारान्त धातु के आगे के 'न' को जब 'इ' करने लगते हैं तब धातु के 'ई' को 'इअ' वा 'इय' हो जाता है ।

ऐसे ही ऊकारान्त धातु का 'उअ' वा 'उव' हो जाता है। जैसे जिअइ वा जियइ, पिअइ वा पियइ, सिअइ वा सियइ और छुअइ वा छुवइ—इत्यादि

(चौ०) झूठइ लेना झूठइ देना [1 2 3 4]

(अर्थ) १ झूठ ही २ लेना ३ झूठ ही ४ देना।

यहाँ हम देखते हैं कि 'लेना देना' (क्रियार्थक संज्ञा) लोक-भाषा के समान ही प्रयुक्त किये गये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२२८) मानस में कभी कभी क्रियार्थक संज्ञा लोक-भाषा के समान प्रयुक्त की गई है।

(चौ०) राम विलोकनि बोलनि चलनी

(अर्थ) राम का विलोकना (देखना) बोलना, चलना।

(चौ०) सुमिरि सुमिरि शोचत हँसि मिलनी [3 4 1 2]

(अर्थ) और १ हँसकर २ मिलना ३ स्मरण कर करके ४ सोचते हैं।

अवतरण—इन चौपाइयों में हम देखते हैं कि 'विलोकनि' और 'बोलनि' ह्रस्व 'नि' वाली, और 'चलनी' 'मिलनी' दीर्घ 'नी' वाली क्रियार्थक संज्ञाएँ हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२२९) मानस में कहीं कहीं क्रियार्थक संज्ञा का प्रयोग,

धातु के साथ ह्रस्व 'नि' और कहीं कहीं दीर्घ 'नी' लगा कर, किया गया है।

(चौ०) टूट[1] चाप[2] नहिं[4] जुरहि[5] रिसाने[3]

(अर्थ) १ टूटा २ धनुष ३ रिसाने से ४ नहीं ५ जुड़ता।

इसमें 'रिसाने' पद क्रियार्थक संज्ञा का है, और वह लोक-भाषा की क्रियार्थक संज्ञा का निर्विभक्तिक रूप है। यद्यपि उससे विभक्ति तो नहीं जुड़ी है तो भी विभक्ति के कारण जो रूप में विकार होता है सो उसमें देखा जाता है, अर्थात् 'आ' को 'ए' हो गया है। सो नियम होता है कि:—

(२३०) मानस में कहीं कहीं लोक-भाषा की क्रियार्थक संज्ञा का निर्विभक्तिक रूप विभक्ति के कारण होने वाले विकार को रखता है।

(चौ०) भूपति[1] जिअब[2] मरब[3] उर[4] आनी[5]

(अर्थ) १ राजा का २ जीना ३ मरना ४ हृदय में ५ लाकर—

(चौ०) हसब[2] ठठाइ[1] फुलाउब[4] गाला[3]

(अर्थ) १ ठठा कर २ हँसना (और) ३ गाल ४ फुलाना।

(चौ०) दानि[1] कहाउब[2] अरु[3] कृपनाई[4]

(अर्थ) १ दानी २ कहाना ३ और ४ कंजूसपन—

अवतरण—इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य जिअब, मरब, हँसब, फुलाउब, कहाउब—हैं। ये सब क्रियार्थक संज्ञा के अर्थ में आये हैं; फिर हम यह भी देखते हैं कि इनमें धातु से सर्वत्र 'ब' जुड़ा है। परन्तु जो जो धातु आकारान्त हैं उनके प्रयोग में धातु और 'ब' के बीच ह्रस्व 'उ' है। सो नियम हुआ कि:—

(२३१) मानस में कहीं कहीं धातु से 'ब' जोड़कर क्रियार्थक संज्ञा कही गई है; और यदि धातु स्वरान्त हो तो धातु और 'ब' के बीच में 'उ' का आगम हो जाता है। यदि धातु दीर्घ ईकारान्त हो तो उसकी 'ई' को 'इअ' वा 'इय' हो जाता है। ऐसे ही ऊकारान्त धातु के 'ऊ' को 'उअ' वा 'उव' हो जाता है।

विवरण—यद्यपि नियम में स्वरान्त कहा गया है परन्तु जानना चाहिये कि—खा, जा, को हा, दे, ले, और हो—धातु में 'उ' का आगम नहीं होता, और ईकारान्त ऊकारान्त में भी 'उ' का आगम नहीं होता।

(चौ०) मैं[१] तव[२] दसन[३] तोरिबे[४] लायक[५]

(अर्थ) १ मैं २ तेरे ३ दाँत ४ तोड़ने को ५ समर्थ हूँ।

यहाँ हम देखते हैं कि 'तोर' धातु से 'बे' जोड़ दिया गया है, और धातु और 'बे' के बीच में 'इ' हो गई है। सो नियम हुआ कि:—

(२३२) मानस में कभी कभी धातु से 'इबे' जोड़ कर क्रियार्थक संज्ञा बना ली गई है।

विवरण—'धातु' और 'बे' के बीच जो 'इ' होती है वह कभी कभी छोड़ भी दी जाती है; जैसे 'खाइबे' वा 'खाबे' 'पढ़िबे' वा 'पढ़बे' आदि।

इस क्रियार्थक संज्ञा का संमिलित नियम ऐसा होगा।

(२३३) मानस में क्रियार्थक संज्ञा, धातु से—न, ना, नि, नी, ने, इ, ब, वा इबे—जोड़ कर बना ली गई है।

विवरण—इस प्रकार की क्रियार्थक संज्ञा प्राकृत हिन्दी की समझनी चाहिये, क्योंकि गँवई गाँवों में ये रूप अब तक बोले जाते हैं।

क्रियार्थक संज्ञा का उपयोग।

(चौ०) भयउ[१] न[२] है[३] कोउ[४] होनेउ[५] नाहीं[६]

(अर्थ) १ हुआ २ न ३ है ४ कोई ५ होना भी ६ नहीं।

इसमें 'होनेउ' क्रियार्थक संज्ञा का रूप है और वह विधेयार्थ में आया है। सो नियम हुआ कि:—

(२३४) मानस में कभी कभी क्रियार्थक संज्ञा विधेयता के अर्थ में कही गई है। यथा—'भे न भाइ' अस अहहिं न होने।'

विवरण—ऊपर की चौपाइयों में निषेधार्थक शब्द दो बार

कहे गये हैं, परन्तु जब अर्थ करने लगते हैं तब ये तीन वार काम में लाये जाते हैं। यह 'देहली-दीपक न्याय' से होता है; जैसे देहली पर रक्खा हुआ दीपक दोनों ओर, अर्थात् भीतर भी और बाहर भी उजाला देता है, वैसे ही यहाँ 'न' काम देता है।

(चौ०) भरेउ[२] सुमानस[१] सुथलु[३] थिराना[४]

(अर्थ) १ सुन्दर मानस २ भरा (और) ३ सुन्दर थल में ४ थिराया।

(चौ०) विष्णु[१] वचन[२] सुनि[३] सुर[४] मुसकाने

(अर्थ) १ विष्णु की बातें २ सुन कर ३ देवता ४ मुसकुराये।

(चौ०) निज निज सेन सहित[१] बिलगाने[२]

(अर्थ) १ अपनी अपनी सेना सहित २ विलगाये।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'थिराना' मुसकाने' और 'विलगाने' हैं। ये देखने में क्रियार्थक संज्ञा के रूप हैं, परन्तु अर्थ में सामान्य भूतकाल हैं, क्योंकि अर्थ है, थिराया, मुसकाये, और विलगाये। सो नियम हुआ कि:—

(२३५) मानस में कभी कभी क्रियार्थक संज्ञा सामान्य भूत काल के अर्थ में आती है।

धातु का उपयोग

(चौ०) जान[३] आदि[१] कवि नाम[२] प्रतापू

(अर्थ) १ आदिकवि ने (वाल्मीकिजी ने) २ नाम का प्रताप ३ जाना।

(चौ०) नाम[2] प्रभाउ जान[4] शिव[1] नीको[3]

(अर्थ) १ शिवजी ने २ नाम का प्रभाव ३ अच्छी रीति से ४ जाना।

(चौ०) कह[2] प्रभु[1] जाहु[6] जो[3] विनहि[4] बोलाए[5]

(अर्थ) १ प्रभु ने २ कहा ३ यदि ४ विना ५ बुलाए ६ जाओ—

(चौ०) सुनि[2] रिसाइ[3] कह[4] भृगुकुल केतू[1]

(अर्थ) १ परशुराम ने २ सुनकर (और) ३ रिसा कर ४ कहा।

(चौ०) छुवतहि[3] टूट[4] पिनाक[2] पुराना[1]

(अर्थ) १ पुराना २ पिनाक (शिवजी के धनुष का यह मुख्य नाम है) ३ छूते ही ४ टूट गया।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखा लगे पद हमारे लक्ष्य हैं। जैसे, जान, कह और टूट। ये सब देखने में धातु के रूप हैं, परन्तु अर्थ में सब भूत काल की क्रिया हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२३६) मानस में कभी कभी धातु का रूप भूत काल के अर्थ में लिखा गया है।

(दो०) श्रुति[1] पुरान मुनि गाव[2]

(अर्थ) १ वेद पुरान और मुनि २ गाते हैं।

१ २ ४ ३
(चौ०) प्रभु विधि वचन कीन्ह चह साँचा

(अर्थ) १ प्रभु २ ब्रह्मा का वचन ३ सच्चा ४ किया चाहता है।

२ १ ४ ३
(चौ०) आपु सरिस सबही चह कीन्हा

(अर्थ) १ सभी को २ अपने सरीखा ३ किया ४ चाहता है।

२ ३ ४ ५ १
(चौ०) जारेहु सहजु न परिहर सोई

(अर्थ) १ वह २ जलाने पर भी ३ स्वभाव ४ नहीं ५ त्यागता।

१ २ ४ ३
(चौ०) जेहिकर मन रम जाहिसन

(अर्थ) १ जिसका २ मन ३ जिससे ४ रमता है।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद गाव, चह, परिहर, रम—ये हैं। देखने में ये सब धातु रूप जान पड़ते हैं परन्तु अर्थ में सब वर्तमान काल की क्रिया हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(२३७) मानस में कहीं कहीं धातु रूप वर्तमान काल के अर्थ में कहा गया है।

---

१ २ ५ ३ ४
(चौ०) जो बालक कह तोतरि बाता

(अर्थ) १ यदि २ बालक ३ तुतली ४ बात ५ कहे।

३ १ ४ ५ २
(चौ०) सदा सो सानुकूल रह मोपर

(अर्थ) १ वह २ मुझ पर ३ सदा ४ कृपालु ५ रहे।

२ ५ ३ ४ १
(चौ०) जो नहाइ चह एहि सर भाई

(अर्थ) १ हे भाई २ जो ३ इस ४ सरोवर में ५ नहाया चाहे—

४ ५ ६ ३ २ १
(चौ०) दुख न पाव पितु सोच हमारे

(अर्थ) १ हमारे २ सोच में ३ पिता जी ४ दुःख ५ न ६ पावें।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में हम—कह, रह, चह, पाव, ये रूप पाते हैं जो देखने में धातु-रूप जान पड़ते हैं, परन्तु अर्थ में सब संभाव्य भविष्यत् काल के हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२३८) मानस में कभी कभी धातुरूप संभाव्य भविष्यत् काल के अर्थ में पाया जाता है।

---

२ ३ ४ १
(चौ०) दोषौ गुन सम कह सब कोई

(अर्थ) १ सब कोई २ दोष को भी ३ गुण के समान ४ कहेंगे।

४ ५ ६ ३ १ २
(चौ०) हठ न छूट छूटै बरु देहा

(अर्थ) १ चाहे २ देह ३ छूट जावे (परन्तु) ४ हठ ५ नहीं ६ छूटेगी।

१ ३ २
(दो०) गये जानु सब कोइ

(अर्थ) १ जाने पर २ सब कोई ३ जानेंगे।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद हमारे लक्ष्य हैं। इनका रूप तो धातु का है पर अर्थ भविष्यत् काल का है सो नियम हुआ कि:—

(२३९) मानस में कभी कभी धातु-रूप भविष्यत् काल के अर्थ में आता है।

(चौ०) टूट[1] चाप[2] नहिं[4] जुरै[5] रिसाने[3]

(अर्थ) १ टूटा हुआ २ धनुष ३ रिसाने से ४ नहीं ५ जुड़ेगा।

इस चौपाई में हमारा लक्ष्य 'टूट' है। यह धातु के रूप में दीखता है परन्तु अर्थ में कर्तृवाचक रूप कृदन्त है और 'चाप' का विशेषण है। सो हम जानते हैं कि:—

(२४०) मानस में कभी कभी धातु-रूप कर्तृ या कर्म वाचक रूप कृदन्तीय विशेषण के लिये आता है।

(चौ०) जिमि[1] हिम उपल[2] कृषी[3] दल[4] गरहीं[5]

(अर्थ) १ जैसे २ ओले ३ खेती को ४ नाश करके ५ गल जाते हैं।

(चौ०) जो[1] कछु[5] कहौं[6] कपट[3] कर[4] तोही[2]

(अर्थ) १ यदि २ तुझसे ३ कपट ४ करके ५ कुछ ६ कहूँ।

अवतरण—इन चौपाइयों में हमारे लक्ष्य 'दल' और 'कर' हैं

ये धातु रूप दीखते हैं परन्तु इनका अर्थ पूर्वकालिक क्रिया का है। सो नियम होता है कि:—

(२४१) मानस में कभी कभी धातु रूप पद पूर्वकालिक क्रिया के लिये आता है।

विवरण—जिस पुस्तक से हमने उदाहरण संग्रह किये हैं उसमें 'दलि' और 'करि' ऐसा पाठ है, और यह रूप सचमुच पूर्वकालिक का है जैसा कि हम आगे बतावेंगे। परन्तु किसी किसी पुस्तक में यही पाठ ऊपर दिये हुए रूप में है; सो यह जान कर कि लोक-भाषा में धातुरूप पूर्वकालिक क्रिया होती है, इस नियम को रचा।

संमिलित नियम ऐसा होगा कि:—

(२४२) मानस में धातुरूप—भूत काल, वर्तमान काल, संभाव्य भविष्यत्, सामान्य भविष्यत् कर्तृ वा कर्मवाचक रूप कृदन्तीय विशेषण और पूर्वकालिक क्रिया के अर्थ में पाया जाता है।

कर्तृ वा कर्मवाचक रूप कृदन्त का उपयोग—

(चौ०) हँसिबे[१] जोग हँसे[२] नहिं[४] खोरी[३]

(अर्थ) १ हँसने योग्य है २ हँसने में ३ खोटाई ४ नहीं।

(दो०) गये[१] जानु[३] सब[२] कोइ

(अर्थ) १ जाने पर २ सब कोई ३ जानेंगे।

२ १ ३
(चौ०) कियेहु कुवेषु साधु सनमानू

(अर्थ) कुवेष २ करने पर भी ३ साधुओं का सनमान होता है।

५ ४ १ २ ३
(चौ०) रहति न प्रभु चित चूक कियेकी

(अर्थ) १ प्रभु के चित्त में २ चूक ३ करने की (सुधि) ४ नहीं ५ रहती।

अवतरण—इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य हँसे, गये, कियेहु, किये की, हैं। ये सब कर्तृवाचक रूप हैं परन्तु अर्थ में क्रियार्थक संज्ञा के लिये आये हैं। सो हम जानते हैं कि:—

(२४३) मानस में कर्तृवाचक रूप कभी कभी क्रियार्थक संज्ञा के बदले आता है।

क्रियाद्योतक का उपयोग

(२४४) क्रियाद्योतक के विषय में 'भाषातत्त्वप्रकाश' में बतलाया गया है। इतनी बात ध्यान में रखनी चाहिये कि ईकारान्त ऊकारान्त और जा, खा, दे, ले, हो, धातुओं को छोड़ शेष स्वरान्त धातु से जब 'त' जोड़ने लगते हैं तो धातु और 'त' के बीच 'व' जोड़ते हैं, और यही मानस का क्रियाद्योतक रूप है। ईकारान्त ऊकारान्त धातुओं से जब 'त' प्रत्यय जोड़ते हैं तब ईकारान्त धातु की 'ई' को 'इय' वा 'इअ' होता है, और ऐसे ही ऊकारान्त धातु के ऊ को 'उव' वा 'उअ' हो जाता है। चाहे इस बात को यों कहें कि मानस में जीना, पीना, छूना, आदि को क्रिया का

साधारण रूप न मान कर उसके बदले जियना वा जिअना, पियना वा पिअना, छुअना वा छुवना—ऐसा क्रिया का साधारण रूप माना जाय । दोनो बातें एक ही हैं । इसके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

३ ४ १ २
(चौ०) आवत देखि बरातिन सीता

(अर्थ) १ बरातियों ने २ सीता को ३ आती ४ देख कर ।

३ ४ २ १
(चौ०) कपिन्ह दिखावत नगरु मनोहर

(अर्थ) १ सुन्दर २ नगर ३ बन्दरों को ४ दिखाते हुए ।

२ १ ५ ४ ३
(चौ०) सेवत तोहि सुलभ फल चारी

(अर्थ) १ तुझे २ सेवते ३ चारों ४ फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) सुलभ हैं ।

१ २ ४ ३
(चौ०) जागत सोवत शरन तुम्हारी

(अर्थ) १ जागते २ सोते ३ तुम्हारी ४ शरण रहते हैं ।

१ २ ५ ४ ३
(चौ०) छुअत शिला भइ नारि सुहाई

(अर्थ) १ छूते ही २ शिला ३ सुन्दर ४ स्त्री ५ हो गई ।

२ ५ १ ३ ४
(चौ०) छुवत चढ़ी जनु सब तनु बीछी

(अर्थ) १ मानों २ छूते ही ३ सब शरीर में ४ बीछी ५ चढ़ी ।

१ ४ ५ २ ३
(चौ०) जिअत न करबि सवति सेवकाई

(अर्थ) १ जीते २ सौति की ३ सेवा ४ न ५ करूँगी ।

३ ४ २ १ ५
(चौ०) जाय जियत जग सो महिभारू

(अर्थ) १ सो २ जगत में ३ व्यर्थ ४ जीता हुआ ५ पृथ्वी का बोझ है।

इन चैापाइयों में रेखाङ्कित पद हमारे ऊपर बतलाये हुए नियम के उदाहरण हैं।

---

३ १ २ ४
(चौ०) कहत साधु महिमा सकुचानी

(अर्थ) १ साधुओं की २ महिमा ३ कहने में ४ सकुचाई।

१ ३ २ ४
(चौ०) सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती

(अर्थ) १ सुमिरने से २ हृदय में ३ दिव्यदृष्टि ४ होती है।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'कहत' और 'सुमिरत' हैं। ये रूप में तो क्रियाद्योतक हैं परन्तु अर्थ में क्रियार्थक संज्ञा हैं। सो नियम होता है कि:—

(२४५) मानस में कभी कभी क्रियाद्योतक रूप क्रियार्थक संज्ञा के बदले में आता है।

---

३ २ ४ १ ५
(चौ०) देखत तुम्हहि नगर जेहि जारा

(अर्थ) १ जिसने २ तुम्हारे ३ देखते ४ नगर को ५ जलाया।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) सुनत युगल कर माल उठाई

(अर्थ) १ सुनते ही २ दोनों ३ हाथों से ४ माला ५ उठाई।

अवतरण—इन चौपाइयों में 'देखत' और 'सुनत' हमारे लक्ष्य हैं। ये क्रियाद्योतक रूप में हैं और इनसे यह प्रतीत होता है कि 'क्रिया के होने के समय में' अथवा 'तुरन्त ही'। सो नियम हुआ कि:—

(२४६) मानस में कभी कभी क्रियाद्योतक का रूप तब भी काम में आता है जब कि अर्थ होता है कि क्रिया के होने के समय में अथवा 'तत्काल'।

(चौ०) सूत[2] वचन सुनतहिं[3] नरनाहू[1]

(अर्थ) १ राजा २ सारथी का वचन ३ सुनते ही।

(चौ०) जानत[2] हू कस[3] पूछिय[4] स्वामी[1]

(अर्थ) १ स्वामी २ जानते भी ३ कैसे ४ पूछते हैं।

इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद 'सुनतहिं' और 'जानतहूँ' हैं। यद्यपि ये रूप क्रियाद्योतक हैं परन्तु इनके पीछे 'हिं' जो 'ही' का पर्यायवाची है—और 'हू' जो 'भी' का पर्यायवाची है—जुड़ा है। सो नियम हुआ कि:—

(२४७) मानस में कभी कभी क्रियाद्योतक रूप के पीछे 'हिं' 'हू' जो क्रम से 'ही' और 'भी' के पर्यायवाची हैं, जुड़ जाते हैं।

(चौ०) देउँ[4] माँगु[3] मन भावत[2] आली[1]

(अर्थ) १ हे सखी २ मन भावनी (वस्तु) ३ माँग ४ (मैं) देऊँ।

(चौ०) निज[3] तनु[4] प्रगटेसि[5] मरती[1] वारा[2]

(अर्थ) १ मरते २ समय ३ अपना ४ शरीर ५ प्रगट किया।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद 'मन भावत' और 'मरती' हैं जो क्रियाद्योतक रूप हो कर विशेषण का काम देते हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२४८) मानस में कभी कभी क्रियाद्योतक रूप विशेषण की रीति पर आया है।

इस प्रकार क्रियार्थक संज्ञा और क्रिया के मुख्य तीनों भागों के विशेष विशेष प्रयोगों को हम बतला चुके। अब क्रिया का एक विशेष रूप और पाया जाता है जो अनेक अर्थों में काम आता है, उसके विषय में बतला कर हम क्रिया के साधारण रूपों को बतलावेंगे। वह रूप धातु से 'इअ' वा 'इय' जोड़ देने से बनता है। जैसे धातु देख + इअ = देखिअ अथवा धातु + देख + इय = देखिय इत्यादि। इस प्रकार के रूप की यह विशेषता है कि जहाँ विधिक्रिया के अर्थ में यह आता है वहाँ को छोड़ शेष स्थलों में जहाँ जहाँ इसका प्रयोग होता है वहाँ वहाँ असाधारणता वा कठिनता का भाव रहता है।

---

१ २ ४ ३
(चौ०) रन चढ़ि करिय कपट चतुराई

(अर्थ) १ रन में २ चढ़ कर ३ कपट की चतुराई ४ करना—

३ ४ २ १
(चौ०) खाइय पहिरिय राज तुम्हारे

(अर्थ) १ तुम्हारे २ राज में ३ खाती हूँ ४ पहनती हूँ ।

२ ३ ४ १
(चौ०) गुरु प्रसाद सब जानिय राजा

(अर्थ) १ हे राजा २ गुरु के प्रसाद से ३ सब कुछ ४ जानता हूँ।

१ २ ३ ५ ४
(चौ०) अस विचारि केहि देइय दोषू

(अर्थ) १ ऐसा २ विचार कर ३ किसको ४ दोष ५ दिया जाय।

१ २ ४ ३
(चौ०) व्यर्थ काहि पर कीजिय रोषू

(अर्थ) १ व्यर्थ २ किस पर ३ क्रोध ४ किया जाय ।

१ २ ४ ३
(चौ०) तात कृपा करि कीजिय सोई

(अर्थ) १ हे तात २ कृपा करके ३ वही ४ कीजिए ।

१ ३ २
(सो०) चलिय करिय विश्राम

(अर्थ) १ चलिए २ विश्राम ३ कीजिए ।

४ १ २ ३
(चौ०) कहिय तात सो परम विरागी

(अर्थ) १ हे तात १ वह ३ परम विरागी ४ कहा जाता है ।

(चौ०) शोचिय[४] विप्र[२] जो[१] वेद[३] विहीना

(अर्थ) १ जो २ ब्राह्मण ३ वेद नहीं जानता (वह) ४ शोचनीय है।

(चौ०) शोचिय[६] नृपति[२] जो[१] नीति[३] न[४] जाना[५]

(अर्थ) १ जो २ राजा ३ नीति ४ नहीं ५ जानता (वह) ६ शोचनीय है।

(चौ०) सुनत[१] श्रवन[२] पाइय[४] विश्रामा[३]

(अर्थ) १ सुनते २ कान ३ विश्राम (सुख) ४ पावेगा।

अवतरण

उदाहरणपद	अर्थ	भेद
(१) करिय	करना	क्रियार्थकसंज्ञा
(२) खाइय	खाती हूँ	वर्तमान काल
(३) पहिरिय	पहिरती हूँ	,,
(४) जानिय	जानता हूँ	,,
(५) देइय	दिया जाय	कर्मप्रधान संभाव्य भविष्यत्
(६) कीजिय	किया जाय	,,
(७) कीजिय	कीजिये	विधि क्रिया
(८) चलिय	चलिये	,,
(९) करिय	करिये	,,
(१०) कहिय	कहा जाता	कर्म प्रधान वर्तमान काल
(११) शोचिय	सोचने योग्य	योग्यता प्रकाशन विधि
(१२) पाइय	पावेगा	सामान्य भविष्यत्

इन प्रमाणों से हम जानते हैं किः—

(२४९) मानस में धातु से 'इय' वा 'इअ' जोड़ कर उसका प्रयोग (१) क्रियार्थक संज्ञा (२) वर्तमान काल (३) संभाव्यभविष्यत् (४) आदरपूर्वक विधि क्रिया (५) कर्मप्रधान क्रिया (६) योग्यता प्रकाशन विधि (७) सामान्य भविष्यत् काल के अर्थ में किया जाता है।

विवरण—(१) कपट की चतुराई करना कोई साधारण बात नहीं। (२) किसी से अन्न-वस्त्र का मिलना अर्थात् पालन-पोषण होना साधारण बात नहीं।

(३) गुरु कृपा से सब कुछ जानना अर्थात् सर्वज्ञ होना साधारण बात नहीं।

(४) किसी पर दोष लगाना साधारण बात नहीं।

(५) क्रोध करना भी साधारण बात नहीं।

(६) परम विरागी कहा जाना साधारण बात नहीं बल्कि बड़ा कठिन है।

(७) जो ब्राह्मण हो कर वेद न जाने और राजा हो कर नीति न जाने तो बड़े कष्ट की बात है।

(८) सुन कर कानों को सुख मिलना साधारण बात नहीं। इसी प्रकार अन्यत्र भी जानना चाहिये।

(चौ०) वायस[१] पलिअहि[३] अति अनरागा[२]

(अर्थ) १ कौआ (चाहे) २ बड़े प्यार से पाला जाय वा पले।

(दो०) अंग[2] अंग पर वारियहि[3] कोटि कोटि सत काम[1]

(अर्थ) १ करोड़ करोड़ सौ कामदेव २ एक एक अंग पर ३ वारेजायँ।

अवतरण—इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'पलिअहि' और 'वारियहि' हैं, जो धातु से 'इअहि' वा 'इयहि' जोड़ देने से बने हैं, और जो कर्म प्रधान संभाव्य भविष्यत् काल के हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२५०) मानस में धातु से 'इअहि' वा 'इयहि' जोड़ने से कर्म प्रधान क्रिया का संभाव्य भविष्यत् काल हो जाता है।

विवरण—'इअ' वा 'इय' तो पहले ही बतलाया जा चुका है; इसमें केवल संभाव्य भविष्यत् काल का प्रत्यय 'हि' और अधिक जोड़ दिया गया है। 'पलना' क्रिया कर्म प्रधान है, इस बात को जानना हो तो 'भाषातत्वप्रकाश' के १६५ पृष्ठ में ५०१ नियम को देखना चाहिये।

इति विश्वेश्वरदत्तविरचिते मानसप्रबोधव्याकरणे क्रियार्थक-संज्ञादि-विशेषार्थ-निरूपणो नाम सप्तमोऽध्यायः।

अष्टमोऽध्यायः

(क्रिया की साधारण बातें)

पिछले अध्याय में क्रिया की विशेष बातों का वर्णन हुआ है। अब हम क्रिया की साधारण बातों का वर्णन करेंगे। और बातों के बतलाने से पहले सहकारी क्रियाओं के विषय में बतलाना चाहिए। सहकारी क्रिया हम उन्हें कहते हैं जो प्रयोग में अकेली भी आती हैं और दूसरी क्रियाओं के साथ भी आती हैं। वे तीन हैं—(१) 'होना' (२) 'है' और (३) 'रहना' वा 'था'। ये अकेली भी प्रत्युक्त की जाती हैं और दूसरी क्रियाओं के साथ भी आती हैं। यथा— होत, वा होता, होगा, हुआ आदि अकेली हैं। आया होता, आया होगा, आया हो—आदि में 'होना' क्रिया दूसरी क्रिया के साथ मिल कर आई है। ऐसे ही 'है' 'हूँ' 'हैं' आदि अकेली, और 'आया है। 'आया हूँ' 'आये हैं' आदि मिल कर आने के प्रयोग हैं। रहा, रहे, आदि वा–था, थे,—आदि अकेले और आया रहा, आये रहे, वा आया था, आये थे,–आदि सहकारिता के प्रयोग हैं। इनमें से 'था' का प्रयोग मानस में नहीं पाया जाता, उसके स्थान में गोसाईं जी ने सदा 'रहा' का प्रयोग किया है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि कदाचित् 'रहना' क्रिया ही पहले प्राकृत हिन्दी की सहकारी क्रिया रही हो और पीछे से 'था' का प्रयोग होने लगा

हो । इस कथन से यह न समझ लेना चाहिए कि गोसाईं जी के समय में 'था' क्रिया बोली नहीं जाती थी, किन्तु तात्पर्य यह है कि प्राकृत हिन्दी में लोग अधिकतर 'रहना' का प्रयोग करते रहे होंगे, और 'था' का कम। क्योंकि अगर आज कल भी गँवई गाँवों में जा कर सुनिये और इस बात पर ध्यान दीजिये तो आप 'रहना' क्रिया का प्रयोग तो बहुत अधिक और 'था' का प्रयोग बहुत कम पावेंगे। गोसाईं जी ने ठाना था कि मैं मानस काव्य को प्राकृत हिन्दी में लिखूँगा जैसा कि उन्होंने अनेक स्थानों में कहा है "गिरा ग्राम्य सियराम यश" फिर "भनिति भदेश वस्तु भलि वरनी" इत्यादि। अस्तु, जैसा उन्होंने कहा है वैसा ही उन्होंने किया भी है। क्योंकि मानस में गँवारी भाषा ही अधिकाधिक है। क्रियाएँ, कारकों की विभक्तियाँ, अव्यय, सर्वनाम आदि के रूप ग्राम्य गिरा में ही अधिक हैं। इस कारण मानस में 'था' का प्रयोग नहीं पाया जाता और 'रहा' का पाया जाता है। यथा "खेलत रहा तासु भइ भेटा" "रहा एक दिन अवधि कर" इत्यादि। अब हम इन तीनों सहकारी क्रियाओं की उत्पत्ति के विषय में कुछ विचार लिखते हैं जो आगे काम देगा।

पहले—'होना' वा 'होन'

'होन' संस्कृत 'भवन' का तद्भव है; क्योंकि वर्ण-विचार में कहे हुए नियमानुसार इन विकारों के होने से 'भवन' से 'होन' बना। जैसे 'भ' के स्थान में 'ह' का हो जाना, फिर 'व' का 'ओ' होकर पूर्व स्वर से मिल जाना, जैसा कि 'लोन' आदि में हम बतला आये हैं। इस प्रकार 'भवन' से 'होन' क्रिया का साधारण रूप बना।

अब कुछ क्रिया के विषय में भी विचारिये। संस्कृत में 'भवति' प्रयोग होता है। इसी 'भवति' से हिन्दी की कई एक क्रियाएँ बनी हैं। जैसे 'भवति' से पहले 'भोति' हुआ होगा। फिर 'भोति' से 'होति' हुआ। यहीं से इसकी दो शाखायें हो गईं। एक तो इस प्रकार चली कि 'होति' से 'होत' फिर धीरे धीरे 'होता' बन गया। गँवई में तो 'होत' का अधिक और 'होता' का कम प्रयोग होता है, परन्तु नगरों में 'होता' का अधिक और 'होत' का कम क्या बहुत कम प्रयोग होता है। फिर इसकी दूसरी शाखा इस प्रकार चली। पहले 'होति', फिर प्राकृत नियमानुसार 'त' का लोप हुआ। तब 'होइ' ऐसा रूप बना। फिर हमने बतलाया है कि 'अ' को 'ह' 'इ' को 'हि' 'उ' को 'हु' हो जाता है। इस नियम से 'होइ' से 'होहि' फिर सानुनासिक दीर्घ विकार क्रम से हुए। तब 'होइँ' वा 'होई' वा 'होईं' अथवा 'होहि', 'होहिं' 'होही' 'होहीं' आदि रूप हुए। ये रूप मानस में बहुतायत से होते हैं, क्योंकि ये सब प्राकृत हिन्दी के रूप हैं। इसी प्रकार संस्कृत 'अभवत्' से हिन्दी की कई एक क्रियाएँ होती हैं। यथा 'अभवत्' से पहले 'अभवत' फिर 'अ' के छूट जाने से 'भवत'; फिर 'त' का लोप हो जाने से 'भवा' यह रूप गँवईं में अब तक बोला जाता है, फिर 'भवा' से 'भया' आवश्यकतानुसार फिर इसके अनेक रूपान्तर हुए। यथा भा, भये, भे, भए, भयेउ, भएउ, भइ, भै, भय, भई, भइउ, भइसि आदि। जब उत्तम पुरुष की यह क्रिया होती है और एकवचन बोलना होता है तब इनमें से किसी किसी का प्रायः सानुनासिक रूप हो जाता है। यथा 'भयउँ' वा 'भएउँ' अथवा

'भइउँ' आदि । तात्पर्य यह निकला कि प्राकृत हिन्दी की ये सब क्रियाएँ संस्कृत 'भू' धातु की सन्तान हैं । इनमें से 'भया' और उसके सब रूपान्तर केवल भूत काल में बोले जाते हैं, क्योंकि इन की मूल-क्रिया अभवत् संस्कृत की भूत काल की है।

हिन्दी की 'हुआ' क्रिया संस्कृत, 'अभूत्' से निकली है । 'अ' और 'त' के लोप से तथा 'भ' का 'ह' हो जाने से 'हुआ' रूप सिद्ध होता है । यह बात विद्वान् लोग जानते ही हैं। इसी प्रकार 'भूय' से पहले 'हूइ' फिर 'होइ' और कभी कभी 'ह्वै' ये रूप पूर्वकालिक क्रिया के सिद्ध होते हैं ।

('है' के विषय में)

'है' यह हिन्दी की क्रिया संस्कृत 'अस्ति' से बन गई है। 'अस्ति' का रूप पहले 'असति' हुआ, क्योंकि हमने वर्ण विचार-प्रकरण में बतलाया है कि संयुक्ताक्षर बहुधा अलगा कर बोले जाते हैं; जैसे 'धर्म' से 'धरम' फिर 'असति' से 'अहति' हुआ होगा ; क्योंकि हमने यह भी बतलाया है कि प्राकृत हिन्दी में कभी कभी 'स' का 'ह' हो जाता है। जैसे 'दस' से 'दह'; बीस से 'बीह' आदि में । फिर 'अहति' का 'त' लुप्त हो जाने से 'अहइ' रूप बना; यह रूप गँवई में बोला जाता है और मानस में तो अनेकों स्थलों में पाया जाता है । फिर 'अहइ' से 'अहै', और फिर 'अ' के छोड़ देने से 'है' हो गया । 'अहइ' वा 'है' के रूपान्तर प्राकृत हिन्दी में आवश्यकतानुसार अनेक हो गये ; जैसे—अहै, अहैं, अहे, अहइ,

अहई, अहहि, अहहिं, अहहीं, अहहु, अहहू, हहु, हौं, होउँ, हो, हइ, अहि, आहि, आहहि, आहीं, अहसि, अहौं, अहउँ, आही, हसि—आदि। इनमें से जो जो सानुनासिक हैं सो प्रायः या तो उत्तम पुरुष एकवचन की, और या उत्तम वा अन्यपुरुष के बहुवचन की क्रियाएँ हैं। ऊपर लिखे रूप मानस में कभी तो अकेली क्रिया के रूप में और कभी सहकारी क्रिया के रूप में मिलते हैं। इसलिये इनका संग्रह कर दिया है।

'रहना' वा 'रहन'

'रहना' संस्कृत 'रक्षण' से बनी हुई क्रिया है। 'रक्षण' से 'रखन' हुआ, क्योंकि 'क्ष' का 'ख' होता है—यह बात हम वर्ण-विचार में बता आये हैं। फिर यह भी हमने बतलाया है कि कभी कभी प्राकृत हिन्दी में 'ख' के स्थान में 'ह' होता है; जैसे 'आखेट' से 'अहेर' आदि में; सो जब 'रखन के 'ख' को 'ह' हुआ, तब 'रहन' ऐसा रूप हुआ; 'रहन' से ही 'रहना' हुआ।

यद्यपि ये तीनों धातु—अर्थात् 'होना', 'है' और 'रहना' रूप में भिन्न भिन्न हैं तो भी इन तीनों में विद्यमानता का अर्थ सदा पाया जाता है।

था के विषय में

'था' संस्कृत की 'स्था' धातु से बना है। 'स्था' का अर्थ संस्कृत में 'गति निवृत्ति' है। जिसकी गति निवृत्त हुई वह भी विद्यमान समझा जायगा। परन्तु अर्थ यही होगा कि गति हो चुकी, अर्थात् गमन रूप क्रिया का फल निवृत्त हो गया। इसी अर्थ को, अर्थात् फल—

निवृत्ति रूप अर्थ को, मन में रख कर लोग इसका व्यवहार करने लगे। और यह अपूर्ण भूत और पूर्ण भूतकाल की सहकारी क्रिया बन गई।

सहकारी क्रियाओं के विषय में बता कर, अब हम, 'देना', 'लेना' और 'करना' क्रियाओं के जो असाधारण रूप मानस में पाये जाते हैं, पहले उन्हें दिखाते हैं।

(दो०) ताहि[१] दीन्ह[३] निज धाम[२]

(अर्थ) १ उसको २ अपना लोक ३ दिया।

(चौ०) लीन्ह[५] एक[२] तेहि[१] शैल[३] उपाटी[४]

(अर्थ) १ उसने २ एक ३ पहाड़ ४ उखाड़ ५ लिया।

(चौ०) धर[३] ते भिन्न[४] तासु[१] शिर[२] कीन्हा[५]

(अर्थ) १ उसका २ सिर ३ धड़ से ४ अलग ५ कर दिया।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद हमारे लक्ष्य हैं। इनका अर्थ क्रम से (१) दिया (२) लिया और (३) किया है। ये रूप असाधारण हैं; सो नियम हुआ कि:—

(२५१) मानस में लोकभाषा की 'दिया' 'लिया', 'किया' क्रिया के बदले क्रम से 'दीन्ह' वा 'दीन्हा', 'लीन्ह' वा 'लीन्हा', और 'कीन्ह' वा 'कीन्हा' रूप होते हैं।

विवरण—कभी कभी इनके कुछ रूपान्तर भी मानस में पाये

जाते हैं ; जैसे—दीन्हेउ, दीन्हेसि आदि । परन्तु मूल रूप 'दीन्ह', 'लीन्ह', और 'कीन्ह' ही समझने चाहियें, और ये रूप गँवई गांवों में अब तक प्रचलित हैं; यथा—दिहिन, लिहिन, किहिन; वा दिहिस, लिहिस, किहिस । पहले तीन बहुवचन के और दूसरे तीन एकवचन के हैं ।

---

१ २ ३ ४
(चौ०) फिरती बार मोहि जो देवा

(अर्थ) १ लौटते समय २ मुझे ३ जो कुछ ४ दोगे—

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) सो प्रसाद मैं शिर धरि लेवा

(अर्थ) १ वह २ प्रसाद ३ मैं ४ माथे चढ़ा कर ५ लूँगा ।

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) जेइ पूछिहि तेहि उत्तरु देवा

(अर्थ) १ जो २ पूछेगा ३ उसी को ४ उत्तर ५ दूँगा ।

२ १ ३ ४ ५ ६
(चौ०) जाइ अवध अब यह सुख लेवा

(अर्थ) १ अयोध्या २ जाकर ३ अब ४ यह ५ सुख ६ लूँगा ।

अवतरण—इन प्रमाणों से हम जानते हैं कि:—

(२५२) मानस में कभी कभी 'दे' और 'ले' धातु के भविष्यत् काल में मध्यम और उत्तम पुरुष के 'देवा' और 'लेवा' असाधारण रूप पाये जाते हैं ।

---

२ १ ४ ३ ५

(चौ०) गा चह पार जतनु हिय हेरा

(अर्थ) १ पार २ जाना चाहा ३ हृदय में ४ जतन ५ विचारा।

२ १ ४ ३

(चौ०) गे रघुनाथ भयउ अति शोरू

(अर्थ) १ रामचन्द्र २ गये ३ बड़ा शोर ४ हुआ।

२ १ ३

(दो०) निज लोकहिं विरंचि गै

(अर्थ) १ ब्रह्मा २ अपने लोक को ३ गये।

अवतरण—इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य गा, गे, गै—हैं। ये 'जाना' क्रिया के भूतकाल के रूप—गया, गये, गये—के बदले आये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२५३) कभी कभी मानस में 'गया' 'गये' रूप के बदले 'गा' 'गे' और 'गै' रूप पाये जाते हैं।

विवरण—'गा' एकवचन और शेष बहुवचन के हैं। कभी कभी 'गये' की जगह 'गय' पाठ भी मिलता है।

भाषातत्वप्रकाश में हमने बतलाया है कि क्रिया के मुख्य भाग तीन हैं—(१) धातु, २ क्रियाद्योतक, ३ कर्तृ वा कर्मवाचक रूप कृदन्तीय रूप। इन्हीं से और सब कालों की क्रियाएँ निकलती हैं। धातु से १ संभाव्य भविष्यत्काल २ विधिक्रिया, ३ सामान्य भविष्यत् और ४ पूर्वकालिक क्रियाएँ निकलती हैं। उनमें से पहले संभाव्य भविष्यत् काल के विषय में लिखा जाता है:—

(दो०) तौ[२] मैं[३] जाउँ[४] कृपायतन[१]

(अर्थ) १ हे कृपालु २ तो ३ मैं ४ जाऊँ ।

(चौ०) जौं[१] अपने[२] अवगुन[४] सब[३] कहऊँ[५]

(अर्थ) १ यदि (मैं) २ अपने ३ सब ४ अवगुण ५ कहूँ ।

(दो०) तोरौं[३] छत्रकदंड[१] जिमि[२]

(अर्थ) १ कुकुरमुत्ता के दंड २ की तरह ३ तोड़ डालूँ ।

(दो०) जौं[२] न[३] करौं[४] प्रभु[१] पद सपथ

(अर्थ) १ प्रभु के चरणों की शपथ (खाकर कहता हूँ कि) २ यदि ३ न ४ करूँ (तो—)

(दो०) परौ[४] कूप[३] तुँअ[१] वचन[२] पर

(अर्थ) १ तेरे २ वचन के ऊपर तो (मैं) ३ कुएँ में ४ गिर पड़ूँ ।

(चौ०) जब लगि[३] जिअउँ[४] कहौं[२] कर जोरी[१]

(अर्थ) १ हाथ जोड़ कर २ कहता हूँ (कि) ३ जब तक ४ जीऊँ—

(दो०) जौं[१] हम[२] निदरहि[५] विप्र[३] वदि[४]

(अर्थ) १ यदि २ हम ३ ब्राह्मण ४ बोल कर ५ अनादर करें ।

१ ३ २
(दो०) भय बस नावहिं माथ

अर्थ १ डर से २ माथा ३ झुकावें ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखा लगे पद उत्तम पुरुष के दोनों वचनों में संभाव्य भविष्यत् काल के रूप हैं; जैसे (१) जाउँ (२) कहऊँ (३) तोरों (४) करौं (५) परौ (६) जिअउँ (७) निदरहि (८) नावहिं । इनमें से 'निदरहि' और 'नावहिं' बहुवचन के हैं और शेष एकवचन के । इनमें हम देखते हैं कि कहीं धातु से 'उँ' और कहीं 'ऊँ' आदि जोड़ दिये गये हैं । सो नियम हुआ कि:—

(२५४) मानस में धातु के आगे—उँ, ऊँ, ओं, औं, वा औ–जोड़ने से संभाव्य भविष्यत् काल के उत्तम पुरुष एकवचन की, और 'हि' वा 'हिं' जोड़ देने से बहुवचन की क्रिया सिद्ध होती है ।

विवरण—इन 'उँ' आदि प्रत्ययों में एक 'औ' और दूसरी 'हि' को छोड़ शेष सब सानुनासिक हैं । 'औ' और 'हि' का संग्रह यद्यपि हमने नियम में कर दिया है (क्योंकि ऐसा ही पाठ हमको पुस्तक में मिला है, और हमको अधिकार नहीं कि हम उसमें एक बिन्दु का भी परिवर्तन करें) तो भी हमारा विश्वास है कि गोसाईंजी ने सानुनासिक ही लिखा होगा । यह त्रुटि लिपि-प्रमाद से अथवा प्रेस-कर्मचारियों की असावधानी से हो गई होगी । और यदि ऐसा माना जाय कि गोसाईंजी ने स्वयं ऐसा किया है तो मानना पड़ेगा कि मानस में सानुनासिक और निरनुनासिक

का कुछ भेद मानना न चाहिये । क्योंकि 'हि' और 'हिं' में हम कुछ कारण नहीं देखते कि क्यों एक जगह सानुनासिक है और दूसरी जगह निरनुनासिक; जब कि एक ही दोहे में दोनों पद दिये गये और दोनों का एक ही कर्त्ता है । यदि सानुनासिक और निरनुनासिक का भेद न माना जाय तो समझना चाहिये कि 'उँ' आदि के भी दो दो रूप होंगे । फिर, उदाहरण-श्रेणी में हमने 'जिअउँ' दिखलाया है परन्तु नियम में हमने कोई 'अउँ' प्रत्यय नहीं माना, क्योंकि हम मानते हैं कि लोक-भाषा अर्थात् हिन्दी भाषा में जो 'जीना' क्रिया है वही प्राकृत हिन्दी में 'जिअना' रूप से प्रचलित है । प्रमाण में हम यह कहते हैं कि जिसके मन में सन्देह होवे सो गँवई में जाकर ग्रामीणों के मुख से सुने । यदि ऐसा न माना जाय तो उसके लिये भी मान लो कि 'अउँ' प्रत्यय जुड़ता है और धातु का स्वर ह्रस्व हो जाता है, या ऐसा मान लो कि 'उँ' प्रत्यय होता है और धातु की 'ई' का 'इअ' वा 'इय' हो जाता है । इस प्रकार से कई स्थलों में हम पहिले लिख भी आये हैं । परन्तु हिन्दी की ईकारान्त या ऊकारान्त धातु को प्राकृत में दूसरे प्रकार की मानना (जैसे जिअना, पिअना, सिअना, छुअना) अधिक युक्ति-संगत है और ऐसा करने से नियम रचने में सुगमता होती है । सो हम वैसा ही मानते हैं । फिर यद्यपि बहुवचन में हमने 'एं' प्रत्यय नियम में नहीं लिखा क्योंकि मानस में हमें नहीं मिला, परन्तु किसी प्रति में ऐसा भी मिलना संभव है; यदि न भी मिले तो भी छन्द में 'एं' प्रत्यय हो सकता है । जैसे, यदि

गोसाईं जी चाहते तो ऐसा पाठ भी लिख सकते थे 'जौं हम निदरैं विप्र वदि'"।

४ ५ २ ३ १
(चौ०) बड़े भाग उर आवइ जासू

(अर्थ) १ जिसके २ हृदय में ३ आवे (उसके) ४ बड़े ५ भाग हैं।

४ २ ३ १
(चौ०) सहि कि दरिद्र जनित दुख सोई

(अर्थ) १ वह २ क्या ३ दरिद्रता के दुःख को ४ सहे ?

१ २ ३ ४
(चौ०) जासु भवन सुरतरु तर होई

(अर्थ) १ जिसका २ घर ३ कल्पवृक्ष के नीचे ४ होवे ।

४ १ ३ २
(चौ०) पूजिहिं विधि अभिलाषु हमारा

(अर्थ) १ परमेश्वर २ हमारी ३ अभिलाषा ४ पूर्ण करें।

१ ४ ५ २ ३
(दो०) तौ फुर होउ जो कहेउँ

(अर्थ) १ तो २ जो ३ कहा (सो) ४ सच ५ होवे ।

१ ३ २ ४
(चौ०) सम्वत मध्य नाश तव होऊ

(अर्थ) १ साल के भीतर २ तेरा ३ नाश ४ होवे ।

१ ४ ३ २
(चौ०) जौं बरषे वर वारि विचारू

(अर्थ) १ यदि २ विचाररूपी ३ श्रेष्ठ पानी ४ बरसे—

१ ३ २ ५ ४
(चौ०) को करि तरक बढ़ावै साखा

(अर्थ) १ कौन २ तर्क ३ करके ४ साखा ५ बढ़ावे ?

४ ३ २ १
(चौ०) रहो चढ़ाउब तोरब भाई

(अर्थ) १ हे भाई २ तोड़ना (और) ३ चढ़ाना तो ४ रहे—

२ १ ३ ४ ५
(चौ०) बसौ भवन उजरौ नहिं डरऊँ

(अर्थ) १ घर (चाहे) २ बसे (वा) ३ उजड़े ४ (मैं) नहीं ५ डरती हूँ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद हमारे लक्ष्य हैं। जैसे—आवइ, सहि, होई, पूजिहिं, होउ, होऊ, बरषे, बढ़ावै, रहो, बसौ, उजरौ। ये सब अन्य पुरुष एकवचन संभाव्य भविष्यत् काल के रूप हैं। ये ही छन्द में मध्यमपुरुष एकवचन के भी हो सकते हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'इ' आदि जोड़ दिये गये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२५५) मानस में संभाव्य भविष्यत् मध्यम वा अन्यपुरुष के एकवचन में धातु से—इ, ई, इहिं, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, वा औ—जोड़ दिया गया है।

विवरण—'इअ' वा 'इय' अथवा 'इअहि' वा 'इयहिं' और धातु-रूप पहले ही (सातवें अध्याय में) बतला दिये गये हैं। कहीं कहीं 'हि', 'हीं' वा 'हिं' भी हो सकते हैं।

(दो०) जौं[1] नृप[2] सेतु[3] कराहिं[4]

(अर्थ) १ यदि २ राजा लोग ३ पुल ४ बँधा देवें—

(चौ०) जौ[2] महेश[1] मोहि[3] आयसु[4] देहीं[5]

(अर्थ) १ यदि २ महादेवजी ३ मुझे ४ आज्ञा ५ देवें—

(चौ०) सोवहु[3] समर[2] सेज दोउ[1] भाई

(अर्थ) १ दोनों भाई २ समर शय्या में ३ सोवें ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद—कराहिं, देहीं, सोवहु—हमारे लक्ष्य हैं और ये सब अन्यपुरुष बहुवचन संभाव्य भविष्यत् काल के रूप हैं । इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'हिं' आदि जोड़ दिये गये हैं । सो नियम हुआ कि:—

(२५६) मानस में अन्यपुरुष बहुवचन संभाव्य भविष्यत् के लिये धातु से 'हिं', 'हीं' वा 'हु' जोड़ दिया गया है ।

विवरण—सानुनासिक निरनुनासिक के भेद से ये ही दूने हो जाते हैं ।

(चौ०) जौं[2] बिनु[3] बोले जाहु[4] भवानी[1]

(अर्थ) १ हे भवानी २ यदि ३ विना बुलाए ४ जाओ—

(चौ०) अजर[2] अमर[3] गुननिधि[4] सुत[1] होहु[5]

(अर्थ) १ हे बेटा २ अजर (बुढ़ापा रहित) ३ अमर (और) ४ गुन की खानि ५ होओ।

अवतरण—इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'जाहु' और 'होहू' पद हैं। ये मध्यमपुरुष बहुवचन संभाव्य भविष्यत् के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से कहीं 'हु' और कहीं 'हू' जोड़ दिया गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२५७) मानस में मध्यमपुरुष बहुवचन संभाव्य भविष्यत् काल के लिये धातु से कहीं 'हु' और कहीं 'हू' जोड़ दिया जाता है।

सामान्य भविष्यत् काल

(चौ०) कहिहउँ[४] नाइ[३] राम[१] पद माथा[२]

(अर्थ) १ राम के चरणों में २ माथा ३ नवा कर ४ कहूँगा।

(चौ०) कहिहौं[४] सोइ[१] संवाद[२] बखानी[३]

(अर्थ) १ वही २ संवाद ३ बखान करके ४ कहूँगा।

(चौ०) बाढ़े[२] कथा[१] पार[३] नहिं[४] लहऊँ[५]

(अर्थ) १ कथा २ बढ़ेगी (और मैं) ३ पार ४ नहीं ५ पाऊँगा।

(चौ०) जाइ[२] उतरु[४] अब[१] देहौं[५] काहा[३]

(अर्थ) १ अब २ जाकर ३ क्या ४ उत्तर ५ दूँगी।

१ २ ३
(छं०) तुम सहित गिरिते गिरौं

(अर्थ) १ तुम समेत २ पहाड़ से ३ गिरूँगी।

१ २ ३ ६ ४ ५
(चौ०) सो सब हेतु कहब मैं गाई

(अर्थ) १ वह २ सब ३ कारण ४ मैं ५ गाकर ६ कहूँगा।

३ ४ १ २
(चौ०) भाषाबंध करबि मैं सोई

(अर्थ) १ मैं २ वही ३ भाषा बद्ध ४ करूँगा।

अवतरण—इन प्रमाणों में हम 'कहिहउँ' आदि उत्तम पुरुष एकवचन भविष्यत् काल की क्रिया पाते हैं, और देखते हैं कि धातु से 'इहउँ' आदि जोड़कर वे क्रियाएँ बनाली गई हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२५८) मानस में उत्तम पुरुष एकवचन भविष्यत् काल की क्रिया के लिये धातु से—इहउँ, इहौं, ऊँ, ऐहौं, औं, ब, बि—जोड़ दिया जाता है।

विवरण—यदि कहीं—इहों, ऐहैं, ओं—मिलें तो उन्हें क्रम से—इहौं, ऐहौं, और औं—के रूपान्तर जानो। और 'इहउँ', 'इहौं', ये दोनों भी परस्पर रूपान्तर हैं। सानुनासिक निरनुनासिक का भेद—कि वे एक दूसरे के बदले में हो जाते हैं, (हम पहले ही कह चुके हैं) 'लेवा' रूप भी हमने सातवें अध्याय में बतला ही दिया है।

२ ३ १
(दो०) कबहिं देखिबे नयन भरि

(अर्थ) १ आँख भर २ कब ३ देखेंगे ?

(चौ०) पुनि[1] देखब[3] रघुबीर-बिवाहू[2]

(अर्थ) १ फिर २ राम का विवाह ३ देखेंगे।

(चौ०) रिपुहिं[1] जीति[2] आनिबी[4] जानकी[3]

(अर्थ) १ शत्रु को २ जीतकर ३ जानकी को ४ लावेंगे।

(चौ०) अस[1] बर[2] तुम्हहिं[4] मिलाउब[5] आनी[3]

(अर्थ) १ ऐसा २ दूल्हा ३ लाकर ४ तुमसे ५ मिलावेंगे।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद हमारे लक्ष्य हैं जो उत्तम पुरुष बहुवचन भविष्यत् काल के रूप हैं, जैसे—देखिबे, देखब, आनबी, मिलाउब। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'बे' आदि जुड़े हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२५६) मानस में उत्तम पुरुष बहुवचन भविष्यत्काल की क्रिया के लिये धातु से कहीं 'ब' कहीं 'बी' और कहीं 'बे' जोड़ दिया गया है।

विवरण—इनमें से 'ब' को मुख्य समझना चाहिये। शेष उसी के रूपान्तर जानने चाहियें। 'मिलाउब' में 'उब' दीखता है, परन्तु उसे 'उब' प्रत्यय न समझना चाहिये। प्रत्यय उसमें भी 'ब' ही है; परन्तु प्राकृत का नियम यह है कि जिस धातु के अन्त में 'व' अक्षर होवे, और उससे जब भविष्यत्काल का 'ब' प्रत्यय होने लगे, तब

धातु का 'ब' 'उ' होजाता है। और यह भी नियम है कि ईकारान्त ऊकारान्त और—खा, जा, दे, ले, हो—धातुओं को छोड़ शेष सब स्वरान्त धातु प्राकृत हिन्दी में 'व' सहित बोली जाती हैं। जैसे लोक-भाषा में 'गाना' क्रिया है। यही प्राकृत हिन्दी में 'गावना' इस रूप में बोली जाती है, क्योंकि इस क्रिया की धातु 'गा' है, जो स्वरान्त है। इसलिये धातु से 'व' जुड़ गया। फिर जब इससे उत्तम पुरुष बहुवचन भविष्यत्काल का 'ब' प्रत्यय जोड़ा तब वह 'व' जो धातु से जुड़ा था, 'उ' बन गया। ऐसे ही लोक-भाषा में 'फुलाना' प्राकृत हिन्दी में 'फुलावना' और भविष्यत्काल उत्तम पुरुष बहुवचन में 'फुलाउब' आदि और भी जानने चाहियें। एक धातु लोकभाषा की 'पठाना' है। जब इससे 'व' जुड़ता तब इसके स्वर का ह्रस्व विकल्प से होता, जैसे—'पठावना' वा 'पठवना' अर्थात् भेजना।

(चौ०) फिरि[२] पछितैहसि[४] अन्त[३] अभागी[१]

(अर्थ) १ रे अभागिनी २ फिर ३ अन्त में ४ पछतावेगी।

(चौ०) जैहँसि[४] तैं[१] समेत[३] परिवारा[२]

(अर्थ) १ तू २ परिवार ३ समेत ४ जावेगा।

अवतरण—इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य पद 'पछितैहसि' और 'जैहँसि' हैं। जो मध्यम पुरुष एकवचन भविष्यत्काल की क्रिया हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'ऐहसि' जोड़ा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२६०) मानस में मध्यम पुरुष एकवचन भविष्यत्काल की क्रिया के लिये धातु से 'ऐहसि' जोड़ दिया जाता है।

विवरण—यदि कहीं 'इहसि' मिले तो उसे इसीका रूपान्तर समझना चाहिये। जब कभी 'इहसि' प्रत्यय जुड़ेगा तब यदि धातु का स्वर दीर्घ 'आ' होवे, तो उसे ह्रस्व हो जायगा, और, प्रत्यय उससे (संधि के नियम से) मिलाया न जायगा। जैसे—जइहसि, पछितइहसि, आदि।

(चौ०) हँसिहहु[४] सुनि[३] हमारि[१] जड़ताई[२]

(अर्थ) १ हमारी २ मूर्खता ३ सुन कर ४ हँसोगे।

(चौ०) हँसी[३] करैहहु[४] परपुर[१] जाई[२]

(अर्थ) १ दूसरे के नगर में २ जाकर ३ हँसी ४ कराओगे।

(चौ०) पावहुगे[४] फलु[३] आपन[१] कीन्हा[२]

(अर्थ) १ अपने २ किये का ३ फल ४ पाओगे।

अवतरण—इन प्रमाणों में हँसिहहु, करैहहु, और पावहुगे—ये हमारे लक्ष्य हैं। ये सब पद मध्यम पुरुष बहुवचन भविष्यत्काल के हैं। इनमें हम देखते हैं कि दो क्रियाओं में से एक में धातु से 'इहहु' और दूसरे में 'ऐहहु' जोड़ा गया है, परन्तु तीसरी क्रिया में संभाव्य भविष्यत् क्रिया के आगे 'गे' जोड़ दिया गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२६१) मानस में मध्यम पुरुष बहुवचन भविष्यत्काल की क्रिया के लिये 'इहहु' और 'ऐहहु' तो धातु से, तथा—गा, गे, गो—आदि संभाव्य भविष्यत्काल की क्रिया से पीछे जुड़ जाते हैं ।

विवरण—कहीं कहीं 'गो' जुड़ा हुआ मिलता है ।

१ २ ३ ५ ४
(चौ०) तिन्हहिं कथा सुनि लागिहि फीकी

(अर्थ) १ उनको २ कथा ३ सुन कर ४ फीकी ५ लगेगी ।

१ २ ३ ४
(छं०) प्रभु-सुजस-संगति भनिति भलि होइहि

(अर्थ) १ प्रभु के सुन्दर यश की संगति से २ कविता ३ अच्छी ४ होगी ।

४ २ ३ १
(चौ०) मिटहि पाप परिताप हिए ते

(अर्थ) १ हृदय से २ पाप ३ दुख ४ मिट जायगा ।

४ १ २ ३ ५ ६
(चौ०) रहे न शीलु सनेहु न कानी

(अर्थ) १ न तो २ शील ३ सनेह ४ रहेगा ५ न ६ नाता ।

१ २ ३ ५ ४
(चौ०) जो नहिं जाउँ रहै पछितावा

(अर्थ) १ यदि २ नहीं ३ जाऊँ (तो) ४ पछितावा ५ रहेगा ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखा खींचे पद (लागिहि, होइहिं,

मिटहि, रहे, रहै) हमारे लक्ष्य हैं। ये सब अन्य पुरुष भविष्यत्-काल एकवचन के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'इहि' आदि जोड़ा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२६२) मानस में अन्य पुरुष एकवचन भविष्यत्काल की क्रिया के लिये धातु से—इहि, इहिं, हि, ए, ऐ—जोड़ा जाता है।

विवरण—इहि, इहिं, और ए, ऐ—वास्तव में एक दूसरे के रूपान्तर हैं।

(चौ०) छमिहहिं[४] सज्जन[१] मोरि[२] ढिठाई[३]

(अर्थ) १ सज्जन लोग २ मेरी ३ ढिठाई ४ क्षमा करेंगे।

(चौ०) फिरिहहि[५] मृग[४] जिमि[३] जीव[२] दुखारी[१]

(अर्थ) १ दुखी २ जीव ३ की तरह ४ मृग ५ भटकेंगे।

(दो०) सोइ[१] करिहैं[३] कल्यान[२]

(अर्थ) १ वही २ कल्याण ३ करेंगे।

(दो०) पैहहिं[५] सुख[४] सुनि[३] सुजन[२] सब[१]

(अर्थ) १ सब २ सज्जन ३ सुन कर ४ सुख ५ पावेंगे।

(चौ०) गिरि[२] जड़[४] सहज[३] कहहिं[५] सब लोगू[१]

(अर्थ) १ सब लोग २ पहाड़ को ३ स्वभाव से ही ४ मूर्ख ५ कहेंगे।

१ २ ३ ४ ५ ६

(चौ०) तौ पुनि मोहि जियत नहिं पावैं

(अर्थ) १ तो २ फिर ३ मुझे ४ जीती ५ नहीं ६ पावेंगे ।

४ १ २ ३

(चौ०) जियहिं विचारे निशिचर खाई

(अर्थ) १ विचारे २ राक्षस ३ खाकर ४ जियेंगे ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद (अर्थात् छमिहहिं, फिरिहहि, करिहैं, पैहहिं, कहहिं, पावैं, जियहिं) पद हमारे लक्ष्य हैं । ये सब अन्य पुरुष बहुवचन भविष्यत्काल के रूप हैं । इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'इहहिं' आदि जोड़ दिये गये हैं । सो नियम होता है कि:—

(२६३) मानस में अन्य पुरुष बहुवचन भविष्यत्काल की क्रिया के लिये धातु से—इहहिं, इहहि, इहैं, ऐहहिं, हिं, ऐं—इनमें से कोई न कोई जोड़ दिया जाता है ।

विवरण—इनमें से इहहिं, इहहि, इहैं—परस्पर रूपान्तर हैं ।

विधि क्रिया

२ ३ १ ४ ५

(चौ०) वेगि देखाउ मूढ़ नतु आजू

(अर्थ) १ रे मूर्ख २ जल्दी ३ दिखा ४ नहीं तो ५ आज...

३ १ २ ५ ४ ६

(चौ०) कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा

(अर्थ) १ मूर्ख २ जनक ३ कह ४ किसने ५ धनुष को ६ तोड़ा है ?

(दो०) सत्य[३] वदहिं[४] तजि[२] माख[१]

(अर्थ) १ माख २ छोड़ कर ३ सच ४ बोल ।

(चौ०) पुनि[३] शठ[१] कपि[२] निज[४] स्वामि[५] सराहू[६]

(अर्थ) १ अरे बदमाश २ बन्दर ३ फिर ४ अपने ५ मालिक को ६ सराह ।

(चौ०) अब[२] जनि[४] बतबढ़ाव[३] खल[१] करही[५]

(अर्थ) १ रे खल २ अब ३ बतबढ़ाव ४ मत ५ करे ।

(चौ०) दशन[१] गहहु[३] तृन[२] कंठ[४] कुठारी[५]

(अर्थ) १ दाँतों से २ तिनका ३ दबा (और) ४ गर्दन में ५ कुल्हाड़ी रख ।

(छं०) नृप नायक[१] दे[४] वरदानमिदम्[३ २]

(अर्थ) १ हे राजाधिराज २ यह ३ वरदान ४ दे ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद देखाउ, कहु, वदहिं, सराहू, करही, गहहु, दे—हमारे लक्ष्य हैं । ये सब मध्यम पुरुष एकवचन विधि क्रिया के रूप हैं । इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'उ' आदि जोड़ दिये गये हैं । सो नियम हुआ कि:—

(२६४) मानस में मध्यम पुरुष एकवचन विधि क्रिया के लिये धातु से—उ, ऊ, हिं, ही, हु—जोड़ दिया गया है और कहीं कहीं धातु ही काम में लाई गई है। जैसे—'दे' ।

विवरण—इनमें से मुख्य रूप धातु और 'उ' वा 'हि' का जोड़ना जान पड़ता है। ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व होजाना मात्रा की संख्यापूर्ति के लिये समझना चाहिये।

(दो०) सुनु[२] मुनि[१] मिटहि[४] विषाद[३]

(अर्थ) १ हे मुनि २ सुनो ३ विषाद (दुःख) ४ मिटेगा।

(चौ०) तजहु[२] आस[१] निज निज[३] गृह[४] जाहू[५]

(अर्थ) १ आशा २ छोड़ो ३ अपने अपने ४ घर ५ जाओ।

(सो०) करौ[५] सो[१] मम[२] उर[३] धाम[४]

(अर्थ) १ वही (तुम) २ मेरे ३ हृदय में ४ (अपना) घर ५ बनाओ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखा लगे पद (सुनु, तजहु, जाहू, करौ) हमारे लक्ष्य हैं। ये सब मध्यम पुरुष बहुवचन विधि क्रिया के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'उ' आदि जोड़ दिये गये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२६५) मानस में मध्यम पुरुष बहुवचन विधि क्रिया के लिये धातु से—उ, हु, हू, वा औ—जोड़ दिया गया है।

विवरण—'औ' को 'ओ' होजाना, वा सानुनासिक होजाना, और 'उ' को कहीं दीर्घ होजाना, मानस में कोई नई बात नहीं है।

आदर पूर्वक विधि क्रिया

(चौ०) नाथ[1] राम[2] करिअहि[4] जुवराजू[3]

(अर्थ) १ हे नाथ २ राम को ३ जुवराज ४ कीजिये।

(चौ०) एतना[2] कहा[3] मोर[4] प्रभु[1] कीजै[5]

(अर्थ) १ हे प्रभु २ इतना ३ कहा ४ मेरा ५ कीजिये।

(चौ०) जनक सुता[1] रघुनाथहि[2] दीजै[3]

(अर्थ) १ जानकी २ रामचन्द्रजी को ३ दीजिये।

(चौ०) महाराज[1] कहुँ तिलक[2] करीजै[3]

(अर्थ) १ महाराज का २ तिलक (३) कीजिये।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में रेखाङ्कित पद (करिअहि, कीजै, दीजै, करीजै) हमारे लक्ष्य हैं। ये सब आदरपूर्वक विधि क्रिया के हैं। इनमें से 'करिअहि' क्रिया में हम देखते हैं कि धातु से 'इअहि' जोड़ा गया है। इअ, इय, इअहि, वा इयहि—के विषय में हम सातवें अध्याय में बतला चुके हैं। यहाँ प्रसंग होने से केवल एक उदाहरण दे दिया गया है। शेष—कीजै, दीजै, और करीजे—ये

क्रियाएँ विशेष प्रकार की हैं। इस प्रकार का रूप सब धातुओं का नहीं होता। केवल—देना, लेना, करना, होना—इन्हीं से होता है, और यह बात 'भाषातत्वप्रकाश' में समझा दी गई है। सो नियम यह हुआ कि:—

(२६६) मानस में—दे, ले, हो, और कर—धातु के आदर-पूर्वक विधि क्रिया के रूप विशेष प्रकार के होते हैं, परन्तु शेष धातुओं से 'इअ' वा 'इय' वा 'इअहि' अथवा 'इयहि' जोड़ दिया जाता है।

विवरण—ऊपर 'लेना' और 'होना' के उदाहरण नहीं दिये गये, तो भी विद्यार्थियों को समझ लेना चाहिये कि छंद में यदि आवश्यकता पड़े तो 'ले' धातु का रूप 'लीजिय' वा 'लीजै', और 'हो' धातु का रूप 'हूजिअ' वा 'हूजै' ऐसा हो सकेगा। ऐसे ही 'कीजिय' 'दीजिय' भी जानने चाहियें।

परोक्ष विधि

(छं०) ब्याहिअहु[४] चारिहुँ[२] भाई[३] यहि पुर[१]

(अर्थ) १ इसी नगर में २ चारों ३ भाइयों को ४ ब्याहना।

(चौ०) करेहु[५] सो[३] जतन[४] विवेक[१] विचारी[२]

(अर्थ) १ विवेक से २ विचार कर ३ वह ४ जतन ५ करना।

(चौ०) बान प्रताप[२] प्रभुहिं[१] समुझायहु[३]

(अर्थ) १ प्रभु को २ बाण का प्रताप ३ समझाना ।

(छं०) ए[2] दारिका[3] परिचारिका[4] करि[5] पालिवी[6] करुना मई[1]

(अर्थ) १ हे करुणामय २ इन ३ लड़कियों को ४ टहलुनी ५ करके ६ पालना ।

(छं०) अपराध[2] छमिवो[3] बोलि[1] पठए

(अर्थ) १ बुला भेजा (सो) २ अपराध ३ क्षमा करना ।

(चौ०) मातु[1] मनोरथ[3] पुरउबि[4] मोरी[2]

(अर्थ) १ हे माता २ मेरा ३ मनोरथ ४ पूरा करना ।

(चौ०) परखेसु[4] मोहि[1] एक[2] पखवारा[3]

(अर्थ) १ मुझे २ एक ३ पाख (पंद्रह दिन) तक ४ परखना ।

अवतरण—इन प्रमाणों में रेखाङ्कित पद—ब्याहिअहु, करेहु, समुझायहु, पालिवी, छमिवो, पुरउबि, परखेसु—हैं । ये सब परोक्ष-विधि के रूप हैं । इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'इअहु' आदि जोड़ दिये गये हैं । सो नियम हुआ कि:—

(२६७) मानस में परोक्षविधि के लिये धातु से—इअहु, एहु, यहु, वी, वो, बि, एसु—जोड़ दिये गये हैं ।

विवरण—एहु, यहु, येहु, यउ, येउ—ये सब परस्पर रूपान्तर हैं । कहीं 'वी' आदि मिलता है, और कहीं 'बो' आदि । सो

'व' और 'ब' का बदलाव होता ही है। यह बात हम 'भाषा-तत्व-प्रकाश' में और इस ग्रंथ में भी (वर्ण-विचार-प्रकरण में) बतला चुके हैं ।

---

(२६८) मानस में अन्य पुरुष विधि क्रिया के रूप अन्य पुरुष संभाव्य भविष्यत्काल के से होते हैं ।

पूर्व कालिक क्रिया

(चौ०) धाइ[१] उठाइ[२] लाइ[४] उर[३] लीन्हे[५]

(अर्थ) १ दौड़ कर २ उठा कर ३ हृदय से ४–५ लगा लिया।

(चौ०) एकवार[१] चुनि[४] कुसुम[३] सुहाए[२]

(अर्थ) १ एक समय २ सुन्दर सुन्दर ३ फूल ४ चुन कर—

(चौ०) गुरु[४] पहँ[५] चले[२] निसा[१] बड़ि[३] जानी

(अर्थ) १ बड़ी २ रात (गई) ३ जान कर ४ गुरु के पास ५ चले।

(चौ०) चली[५] संग[३] लै[४] सखी[२] सयानी[१]

(अर्थ) १ चतुर २ सखी ३ संग ४ लेकर ५ चली ।

(सो०) चितै[२] जानकी-लखन-तन[१]

(अर्थ) १ सीता और लक्ष्मण के शरीर की ओर २ देखकर।

(छं०) तब[1] जनक[2] पाय[4] वसिष्ठ[3] आयसु

(अर्थ) १ तब २ जनक जीने ३ वशिष्ठजी की आज्ञा ४ पाकर—

(छं०) मुनीस[1] आयसु पाइकै[2]

(अर्थ) १ मुनीश्वर की आज्ञा २ पाकर—

अवतरण—इन प्रमाणों में धाइ, उठाइ, चुनि, जानी, लै, चितै, पाय, पाइकै, ये पद हमारे लक्ष्य हैं। ये सब पूर्व कालिक क्रिया के रूप हैं। यहाँ हम देखते हैं कि धातु से 'इ' आदि जोड़ दिये गये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२६९) मानस में प्रायः धातु से 'इ' वा 'ई' जोड़कर पूर्वकालिक क्रिया बनाई गई है और कहीं कहीं 'य' अथवा 'इकै' भी जोड़ दिया गया है।

विवरण—मुख्य 'इ' जान पड़ती है, और वह संस्कृत के 'य' की तद्भव है; जैसे—संस्कृत 'विलोक्य' है, उसी का तद्भव प्राकृत हिन्दी में 'विलोकि' हुआ। ऐसे ही संस्कृत 'आकर्ण्य' से 'अकनि' होता है। तात्पर्य यह कि पहले कुछ रूप इसी तरह के प्रचलित हुए। फिर उनके साहचर्य से और और भी बोले जाने लगे और इस प्रकार से 'इ' पूर्वकालिक क्रिया का प्रत्यय बन गया। फिर छंद की मात्रा की संख्या-पूर्ति के कारण यह ह्रस्व से दीर्घ भी हो गया है। 'पाय' में जो 'य' देखा जाता है सो सचमुच संस्कृत ही का है,

क्योंकि संस्कृत 'प्राप्य' का तद्भव 'पाय' है। यह सब वर्ण विचार के नियमों से सिद्ध होते हैं। 'इकै' में 'इ' तो 'य' का रूपान्तर हुई, पीछे से 'कै' हिन्दी का प्रत्यय जुड़ गया। इतना ध्यान में रखना चाहिए कि 'य' और 'इकै' आकारान्त, एकारान्त और ओकारान्त धातुओं से ही मिलेंगे। ईकारान्त ऊकारान्त वा व्यञ्जनान्त से नहीं। 'लै' ऐसे बना कि ले + इ = लै इसमें उच्चारण की सुगमता के निमित्त दोनों स्वरों को मिला कर एक यानी 'ऐ' कर दिया गया है। 'चितै' पूर्वकालिक क्रिया इस प्रकार सिद्ध होती है कि पहले 'चितव' धातु से 'इ' प्रत्यय हुआ, तब 'चितवि' ऐसा रूप सिद्ध हुआ; फिर 'व' का लोप हो जाने से 'चितइ' ऐसा बना, इसी 'चितइ' का रूपान्तर 'चितै' है।

(कर्तृ वा कर्मवाचक रूप से निकले हुए भूतकाल के विषय में)

(चौ०) चला[२] रुधिर[१] रघुनायक[३] जाना[४]

(अर्थ) १ लोहू २ बहचला ३ रामचन्द्र जी ने ४ जाना।

(चौ०) चतुराई[३] तुम्हारि[२] मैं[१] जानी[४]

(अर्थ) १ मैंने २ तुम्हारी ३ चतुराई ४ जानी।

(चौ०) तेहिते[१] कछु[२] गुन दोष[३] बखाने[४]

(अर्थ) १ तिससे २ कुछ ३ गुण-दोष ४ बखाने हैं।

अवतरण—इन प्रमाणों में चला, जाना, जानी, बखाने—ये पद

हमारे लक्ष्य हैं। ये सब भूत काल के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि लोक-भाषा के समान ही धातु से 'आ' जोड़ दिया गया है और लिंग वचनानुसार लोकभाषा की रीति पर उसके 'ई' और 'ए' विकार भी हुए हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२७०) मानस में कभी कभी सामान्य भूत काल का रूप लोकभाषा के समान ही होता है, अर्थात् धातु से 'आ' जुड़ जाता है, और उसके विकार भी लिंग वचनानुसार ही होते हैं।

(चौ०) भरेउ[२] सुमानस[१] सुथलु[३] थिराना[४]

(अर्थ) १ सुन्दर मानस २ भरा ३ सुन्दर स्थल में ४ थिराया।

(चौ०) विष्णु[२] वचन[३] सुनि[१] सुर मुसकाने[४]

(अर्थ) १ देवता २ विष्णु की बात ३ सुन कर ४ मुसकराये।

(चौ०) डगमगानि[२] महि[१] दिग्गज[३] डोले[४]

(अर्थ) १ पृथिवी २ डगमगाई ३ दिग्गज ४ डोल उठे।

अवतरण—इन प्रमाणों में—थिराना, मुसकाने, डगमगानि—ये हमारे लक्ष्य हैं। ये सब भूत काल की क्रियाएँ हैं परन्तु रूप में क्रियार्थक संज्ञा हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२७१) मानस में कभी कभी भूत काल की क्रिया, क्रियार्थक

संज्ञा के रूप में होती है, और लिंग वचनानुसार उसके विकार भी होते हैं ।

विवरण—यह हम सातवें अध्याय में बता चुके हैं । यहाँ प्रसंग-वश स्मरण कराने के लिये फिर लिख दिया है ।

---

१ २ ६ ३ ४ ५

(चौ०) सो कि रहहिं विनु शिव धनु तोरे

(अर्थ) १ सो २ क्या ३ विना ४ शिव का धनुष ५ तोड़े ६ रहेंगे ?

२ ४ ३ १

(चौ०) हरिहि समर्पे विनु सतकर्मा

(अर्थ) १ पुण्य कर्म २ ईश्वर को ३ बिना ४ समर्पण किये—

अवतरण—इन चौपाइयों में 'तोरे' और 'समर्पे' हमारे लक्ष्य हैं । ये भूत काल की क्रिया के रूप हैं । परन्तु इनका अर्थ क्रियार्थक संज्ञा का है; और 'विना' अव्यय के योग में उनके 'आ' को 'ए' हो गया है । सो नियम हुआ कि:—

(२७२) मानस में कभी कभी भूत काल की क्रिया, क्रियार्थक संज्ञा के अर्थ में कही गई है । और यदि 'विना' अव्यय का योग हो तो उसके 'आ' को 'ए' हो जाता है ।

---

१ ३ २

(चौ०) सती शरीर रहिहु बौरानी

(अर्थ) १ सती के शरीर में २ पागल ३ रही थी।

इसमें हम देखते हैं कि 'रहिहु' भूत काल की क्रिया है, और वह ऐसे बना है कि धातु से 'इहु' जोड़ दिया गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२७३) मानस में कभी कभी धातु से 'इहु' जोड़ कर भूत काल की क्रिया बनाली गई है।

(चौ०) उपरोहितहिं[३] देखि[४] जब[१] राजा[२]

(अर्थ) १ जब २ राजा ने ३ उपरोहित को ४ देखा—

(चौ०) चकित[४] विलोकि[५] सुमिरि[३] सोइ[१] काजा[२]

(अर्थ) १ वह २ काम ३ याद करके ४ चकित होकर ५ देखा।

(चौ०) चरन लागि[१] करि[४] विनय[३] विशाला[२]

(अर्थ) १ पैर छू करके २ बड़ी ३ बिनती ४ की।

अवतरण—इन प्रमाणों में देखि, विलोकि, करि— ये पद हमारे लक्ष्य हैं। ये सब भूत काल की क्रियाएँ हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'इ' जोड़ दी गई है। सो नियम हुआ कि:—

(२७४) मानस में कभी कभी सामान्य भूत काल की क्रिया धातु से 'इ' जोड़ कर बनाली गई है।

(दो०) लीन्हिसि जाइ उठाइ

(अर्थ) १ जाकर २—३ उठा लिया।

इसमें हम देखते हैं कि 'लीन्ह' से जो भूत काल की क्रिया का रूप है 'इसि' और जोड़ दिया है। सो नियम हुआ कि:—

(२७५) मानस में 'लीन्ह', 'दीन्ह', और 'कीन्ह' से जो भूत काल की क्रियाएँ हैं कभी कभी 'इसि' भी जोड़ देते हैं।

विवरण—यद्यपि उदाहरण हमने केवल 'लीन्ह' का दिया है तो भी जानना चाहिये की 'दीन्ह' और 'कीन्ह' भी 'लीन्ह' की साथिनें हैं।

(चौ०) अनुपम बालक देखिन्ह जाई

(अर्थ) १ जाकर २ अनुपम (जिसकी उपमा न हो) ३ बालक को ४ देखा।

इसमें हम देखते हैं कि 'देख' धातु से 'इन्ह' जोड़ा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२७६) मानस में कभी कभी धातु से 'इन्ह' जोड़कर भूत काल की क्रिया बनाली गई है।

विवरण—कभी कभो 'इन्ह' के बदले 'एन्ह' भी जोड़ा जाता है।

---

१ ३ २
(चौ०) शंभु गयउ कुंभज ऋषिपाहीं

(अर्थ) १ महादेवजी २ अगस्त्य ऋषि के पास ३ गये।

इसमें हम देखते हैं कि 'गये' रूप को 'गयउ' लिखा गया है। ऐसे ही 'आयउ' आदि और भी मिलते हैं; सो नियम यह हुआ कि:—

(२७७) जिनके अन्त में 'या' वा 'ये' होता है ऐसे भूतकालिक रूपों के 'या' वा 'ये' को मानस में 'य' कर के उसके पीछे कहीं ह्रस्व और कहीं दीर्घ 'उ' जोड़ दिया गया है।

विवरण—इसी प्रकार-दीन्ह, कीन्ह, लीन्ह—से भी 'उ' जुड़ता है; यथा—कीन्हउ। कभी कभी व्यंजनान्त धातु की भूतकालिक क्रिया के अन्तिम स्वर को ह्रस्व करके उससे भी 'उ' जोड़ दिया जाता है। कभी कभी 'उ' के बदले 'हु' भी जोड़ दिया जाता है; यथा—'मथत सिन्धु रुद्रहिं बौरायहु' आदि में।

---

१ ४ ५ २ ३
(दो०) तौं फुर होउ जो कहेउँ

(अर्थ) १ तो २ जो कुछ ३ कहा ४ सच ५ होवे।

१ २ ३ ४
(सो०) प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ

(अर्थ) १ प्यारा २ शरीर ३ तृण के समान ४ त्याग दिया।

१ २ ५ ३ ४
(चौ०) सियहिं विलोकि तकेउ धनु कैसे

(अर्थ) १ सीता को २ देखकर ३ धनुष को ४ कैसे ५ देखा:—

अवतरण—इन प्रमाणों में 'कहेउँ', 'परिहरेउ', और 'तकेउ' हमारे लक्ष्य हैं। ये सब भूतकाल के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'एउ' प्रत्यय जोड़ा गया है। सो नियम होता है कि:—

(२७८) मानस में कभी कभी धातु से 'एउ' जोड़ कर भूतकाल की क्रिया बनाली गई है, परन्तु यदि कर्ता उत्तम पुरुष एकवचन हो तो सानुनासिक 'एउँ' होता है, जैसे 'कहेउँ' में।

विवरण—ऐसे रूप प्रायः एकवचन में होते हैं। कभी कभी 'ऊ' (दीर्घ) भी होता है; जैसे—कहेऊ, दहेऊ—इत्यादि। कहीं कहीं 'हु' भी होता है।

(चौ०) माँगेसि नींद मास षट केरी

(अर्थ) १ छः महीने की २ नींद ३ माँगी।

(चौ०) निज संताप सुनायसि रोई

(अर्थ) १ अपना २ संताप ३ रो कर ४ सुनाया।

अवतरण—इनमें, 'माँगेसि' और 'सुनायसि' हमारे लक्ष्य हैं, जो भूतकाल की क्रिया के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से कहीं 'एसि' और कहीं 'यसि' जोड़ा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२७९) मानस में कभी कभी धातु से 'एसि' वा 'यसि' जोड़ कर भूतकाल की क्रिया बनाली गई है।

(चौ०) चाहहु[४] सुनै[३] रामगुन[१] गूढ़ा[२]

(अर्थ) १ राम के २ गूढ़ गुन ३ सुना ४ चाहते हो।

इसमें हम देखते हैं की 'सुनै' रूप भूतकाल का है, परन्तु संयुक्त क्रिया में है। सो नियम हुआ कि:—

(२८०) मानस में कभी कभी संयुक्त क्रिया में भूतकाल का रूप, धातु से 'ऐ' जोड़ कर बना लिया गया है।

(चौ०) निज दिसि[२] देखि[३] दयानिधि[१] पोसो[४]

(अर्थ) १ दयानिधि ने २ अपनी ओर ३ देख कर ४ पोसा।

इसमें 'पोसो' पद भूतकाल की क्रिया है। यहाँ देखते हैं कि धातु से 'ओ' जोड़ा गया है; सो नियम हुआ कि:—

(२८१) मानस में कभी कभी धातु से 'ओ' जोड़ कर भूतकाल की क्रिया बनाई गई है।

(चौ०) मैं[१] अपनी[२] दिसि कीन्ह[४] निहोरा[३]

(अर्थ) १ मैंने २ अपनी ओर से ३ निहोरा ४ किया।

१ ३ ४ २

(चौ०) कालकूट फल दीन्ह अमी को

(अर्थ) १ हलाहल विषने २ अमृत का ३ फल ४ दिया।

२ १

(दो०) लीन्ह मनुज अवतार

(अर्थ) १ मनुष्य का अवतार २ लिया।

४ ३ १ २

(चौ०) कीन्हेहु प्रश्न मनहुँ अति मूढ़ा

(अर्थ) १ मानो २ महामूर्ख के समान ३ प्रश्न ४ किया।

२ ३ १ ६ ५ ४

(चौ०) सो सुधि राम कीन्ह नहिं सपने

(अर्थ) १ राम ने २ उसकी ३ सुधि ४ स्वप्न में भी ५ नहीं ६ की।

अवतरण—इन प्रमाणों में देखते हैं कि—कीन्ह, दीन्ह, लीन्ह, कीन, और कीन्हेहु—ये रूप भूतकाल के पाये जाते हैं। ये क्रम से 'कर', 'दे', 'ले' धातु के हैं। एक जगह 'कीन्ह' से 'एहु' जुड़ा है। सो नियम हुआ कि:—

(२८२) मानस में—कर, दे, ले—इन धातुओं के भूतकाल के रूप क्रम से—कीन्ह, दीन्ह, और लीन्ह—होते हैं; और कभी कभी इन रूपों के पीछे 'एहु' भी जोड़ दिया जाता है। कभी कभी इन्हीं धातुओं के रूप क्रम से—कीन, दीन, और लीन—भी होते हैं।

विवरण—मानस में ये रूप दीर्घान्त भी पाये जाते हैं; जैसे—कीन्हा, दीन्हा, लीन्हा।

---

५ १ ३ ४ २
(चौ०) किय जेहि युग निजबस निज बूते

(अर्थ) १ जिसने २ अपनी शक्ति से ३ दोनों को ४ अपने वश में ५ किया।

इसमें हम 'किय' रूप पाते हैं जो 'कर' धातु का है और लोक-भाषा के 'किया' रूप का तद्भव है। यहाँ यह छंद की मात्रा-पूर्ति के विचार से दीर्घ का ह्रस्व कर दिया गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२८३) मानस में कभी कभी छन्द की मात्रा-पूर्ति के विचार से ह्रस्व का दीर्घ और दीर्घ का ह्रस्व कर दिया गया है; जैसे—'किया' से 'किय' आदि।

विद्यार्थियों को स्मरण रखना चाहिये कि मानस में धातु के रूप का भूतकाल के अर्थ में प्रयोग होता है। यह बात हम सातवें अध्याय में बतला चुके हैं।

४ ५ १ २ ३
(चौ०) ताहि धरे जननी हठि धावा

(अर्थ) १ माता २ हठ से ३ दौड़ कर ४ उसे ५ पकड़ती है।

इसमें 'धावा' देखने में भूतकाल का रूप है, परन्तु यहाँ पूर्व-कालिक क्रिया के बदले आया है। सो नियम हुआ कि:—

(२८४) मानस में कहीं कहीं भूतकाल का रूप पूर्वकालिक क्रिया के बदले में आया है।

---

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) चोरहिं चन्दिनि रात न भावा

(अर्थ) १ चोर को २ चाँदनी ३ रात ४ नहीं ५ भाती ।

इसमें 'भावा' देखने में भूतकाल का रूप है परन्तु अर्थ में वह वर्तमान काल की क्रिया है । सो नियम हुआ कि:—

(२८५) मानस में कभी कभी भूतकाल की क्रिया वर्तमान काल के अर्थ में आती है ।

---

१ २ ३ ४ ५
(चौ०) सुनत नीक आगे दुख पावा

(अर्थ) १ सुनने में २ अच्छा (परन्तु जिससे) ३ आगे को ४ दुःख ५ पावे ।

इसमें 'पावा' यद्यपि भूतकाल का रूप है परन्तु अर्थ उसका संभाव्य भविष्यत्काल का है । सो नियम हुआ कि:—

(२८६) मानस में कभी कभी ऐसे प्रयोग भी मिलते हैं जो देखने में भूतकाल के जान पड़ते हैं परन्तु अर्थ में वे संभाव्य भविष्यत् के ठहरते हैं ।

---

२ १ ४ ३ ५ ६
(चौ०) जारत नगर न कस धरि खाहू

(अर्थ) १ नगर २ जलाते ३ क्यों ४ न ५ पकड़ कर ६ खाया ?

इसमें 'खाहू' क्रिया देखने में विधि क्रिया सी जान पड़ती है परन्तु अर्थ में वह भूतकाल की है । सो नियम हुआ कि:—

(२८७) मानस में कोई कोई क्रियाएँ ऐसी भी हैं जिनका रूप तो विधि क्रिया का सा है पर अर्थ भूतकाल का होता है ।

(चौ०) रह्यौ[1] सो[2] उभय[4] भाग पुनि[3] भयेउ[5]

(अर्थ) (जो) १ रहा २ वो ३ फिर ४ दो भाग ५ हुआ ।

इसमें 'रह्यौ' क्रियापद है और भूतकाल का द्योतक है । सो नियम हुआ कि:—

(२८८) मानस में कभी कभी धातु से 'यौ' जोड़ कर भूतकाल की क्रिया बना ली गई है । जैसे—लह्यौ, कह्यौ ।

विवरण—ऐसे रूप 'एउ' प्रत्ययान्त के रूपान्तर हैं ।

मानस में संस्कृत के अनेक रूप ज्यों के त्यों आते हैं, यह बात हम बतला आये हैं। जैसे—'विगत निशा रघुनायक जागे,' 'काम कृत कौतुक अयम्' इत्यादि में 'विगत' 'कृत' आदि भूत काल के रूप हैं ।

मानस में विशेष विशेष भूतकालों के लिये विशेष विशेष प्रत्यय नहीं माने गये । सब भूतकालों के रूप इन्हीं प्रत्ययों के अन्तर्गत समझने चाहियें । जैसे—'रहिहु' का अर्थ 'रही थी' फिर 'राम

जस तुलसी कह्यौ' इस का अर्थ है 'कहा है'। योंही और भी समझने चाहियें।

(क्रियाद्योतक रूप से निकले हुए कालों के विषय में)

(चौ०) जौ तुम्ह मिलतेउ प्रथम मुनीशा

(अर्थ) १ हे मुनीशो २ यदि ३ तुम ४ पहले ५ मिलते—

(चौ०) सुनतेउँ सिख तुम्हारि धरि शीशा

(अर्थ) १ (तो) तुम्हारी २ शिक्षा ३ सिर पर ४ धारण करके ५ सुनती।

इनमें 'मिलतेउ' और सुनतेउँ हमारे लक्ष्य हैं। ये हेतुहेतुमद्भूतकाल की क्रिया के रूप हैं। हम देखते हैं कि क्रियाद्योतक रूप से 'एउ' जोड़ दिया गया है। सो नियम यह हुआ कि:—

(२८९) मानस में क्रियाद्योतक रूप के पीछे 'एउ' प्रत्यय जोड़ कर हेतुहेतुमद्भूत काल की क्रिया बनाई है। यदि कर्ता उत्तम पुरुष एकवचन हो तो 'एउँ' जोड़ा जाता है।

विवरण—पुस्तक में जैसा था वैसा ही उदाहरण में लिखा गया, परन्तु मेरी समझ में 'सुनतिउँ' पाठ 'सुनतेउँ' पाठ से अच्छा है। कभी कभी क्रियाद्योतक रूप ही हेतुहेतुमद्भूत के अर्थ में आता है। जैसे—'जौ न होत जग जनम भरत को,'

'जौं पै जिय न होति कुटिलाई' आदि में।

(वर्तमान काल)

धातु-रूप कभी कभी वर्तमानकाल के अर्थ में आता है। यह बात सातवें अध्याय में कही गई है। जैसे—

(चौ०) 'तीरथपतिहिं आव सब कोई'

इसमें 'आव' धातु-रूप है, और वर्तमानकाल का अर्थ देता है।

(चौ०) जेहि[२] कारन[१] मुनि[३] जतन[४] कराहीं

(अर्थ) १ मुनि लोग २ जिसके लिये ३ यत्न ४ करते हैं।

इसमें 'कराहीं' क्रिया यद्यपि वर्तमान काल बहुवचन की है, परन्तु है असाधारण क्रिया, क्योंकि दूसरी व्यंजनान्त धातु का ऐसा रूप नहीं देखा जाता। हाँ, आकारान्त धातु का ऐसा रूप मिलता है; जैसे—नसाहीं, विलाहि आदि। सो नियम हुआ कि:—

(२९०) मानस में, 'कर' धातु के वर्तमानकाल के अर्थ में 'कराउहीं क्रिया'—आई है, किन्तु यह असाधारण समझी जानी चाहिये।

(चौ०) मिटइ[५] न[४] मलिन[२] सुभाउ[३] अभंगू[१]

(अर्थ) १ न छूटनेहारा २ मलिन ३ स्वभाव ४ नहीं ५ मिटता।

(चौ०) देइ[५] सद्य[३] फल[४] प्रगट[२] प्रभाऊ[१]

(अर्थ) १ प्रभाव २ प्रगट है ३ तुरन्त ४ फल ५ देता है।

　　　　३　४　१　२
(चौ०) राम राम रटि विकल भुआलू

(अर्थ) १ व्याकुल २ राजा ३ राम राम ४ रटता है।

　　　१　४　३　२
(चौ०) बहुरि वन्दि खलगन सतिभाएँ

(अर्थ) १ फिर २ सच्चे भाव से ३ खलों की ४ वन्दना करता हूँ।

अवतरण—इन में मिटइ, देइ, रटि, वन्दि—ये पद हमारे लक्ष्य हैं। ये सब वर्तमान काल की क्रियाएँ हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'इ' जोड़ दी गई है; विशेषता यह है कि कहीं तो वह 'इ' धातु के व्यंजन से मिला दी गई है, और कहीं नहीं मिलाई गई। सो नियम यह हुआ कि:—

(२९१) मानस में, वर्तमानकाल की क्रिया के लिये 'इ' प्रत्यय धातु के अन्त के व्यंजन से कभी कभी मिला दिया गया है और कभी कभी नहीं भी मिलाया गया।

　　　१　२　३　४　५
(चौ०) सो जल सुकृत शालि हित होई

(अर्थ) १ वह २ पानी ३ पुण्य रूपी धान के लिये ४ हितकारी ५ होता है।

इसमें 'होई' क्रिया वर्तमान काल की है। इसके विषय में हमने इस अध्याय के आरंभ में बतलाया है कि कैसे इसकी उत्पत्ति हुई

है। प्रसंग होने से यहाँ फिर दिखलाते हैं कि 'हो' धातु से 'ई' जोड़ी गई है। सो नियम हुआ कि:—

(२९२) मानस में वर्तमान काल की क्रिया के लिये कभी कभी धातु से 'ई' भी जोड़ी जाती है।

(चौ०) वेष[2] प्रताप[3] पूजिअहि तेऊ[1]

(अर्थ) १ वे भी २ वेष के प्रताप से ३ पूजे जाते हैं।

इसमें 'पूजिअहि' क्रिया कर्मप्रधान वर्तमानकाल की है; और धातु से 'इअहि' के जोड़े जाने से बनी है। सो नियम होता है कि:—

(२९३) मानस में कभी कभी धातु से 'इअहि' जोड़ कर कर्म-प्रधान वर्तमान काल की क्रिया बना ली गई है।

विवरण—सातवें अध्याय में 'इअ' वा 'इय' के प्रकरण में इसकी चर्चा की गई है।

(चौ०) सो[3] श्रम[4] जाहि[6] न[5] कोटि[1] उपाए[2]

(अर्थ) १ करोड़ २ उपाय से भी ३ वह ४ श्रम ५ नहीं ६ जाता।

(चौ०) उघरहिं[4] विमल[2] विलोचन[3] हीके[1]

(अर्थ) १ हृदय के २ निर्मल ३ नेत्र ४ खुलते हैं।

(चौ०) जलज[2] जोंक[3] जिमि[1] गुन[4] विलगाहीं[5]

(अर्थ) १ जैसे २ कमल ३ जोंक के ४ गुन ५ अलग अलग होते हैं ।

अवतरण—ऊपर के प्रमाणों में—जाहि, उघरहिं, विलगाहीं—क्रियापद हैं । ये वर्तमान काल की क्रिया हैं । इनमें हम देखते हैं कि कहीं तो धातु से 'हि', कहीं 'हिं' और कहीं 'हीं' जोड़ी गई है । सो नियम हुआ कि:—

(२९४) मानस में वर्तमानकाल की क्रिया के लिये धातु से 'हि', 'हिं' वा 'हीं' जोड़ दी गई है ।

विवरण—प्रायः बहुवचन के लिये सानुनासिक का प्रयोग किया जाता है ।

(चौ०) अस[१] विचारि[२] प्रगटौं[५] निज[३] मोहू[४]

(अर्थ) १ ऐसा २ विचार कर ३ अपना ४ मोह ५ प्रगट करता हूँ ।

(चौ०) राम[४] कवन[५] प्रभु[१] पूछौं[३] तोहीं[२]

(अर्थ) १ हे प्रभु २ तुझसे ३ पूछता हूँ (कि) ४ राम ५ कौन हैं ।

(दो०) करउँ[३] एक[१] विस्वास[२]

(अर्थ) १ एक २ विश्वास ३ करता हूँ ।

अवतरण—इन प्रमाणों में 'प्रगटौं', 'पूछौं' और 'करउँ' पद हमारे लक्ष्य हैं। ये सब उत्तम पुरुष एकवचन वर्तमान काल के रूप हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'औं' आदि जोड़ दिये गये हैं। सो नियम हुआ कि:—

(२९५) मानस में उत्तम पुरुष एकवचन वर्तमान काल की क्रिया के लिये धातु से कहीं 'औं' कहीं 'ओं' और कहीं 'उँ' प्रत्यय ज़ोड़ दिया जाता है; और जब 'उँ' होता है तब वह धातु से मिलाया नहीं जाता।

विवरण—हमारा अनुमान है कि इन तीनों में 'ओं' मुख्य है और दो शेष उसी के रूपान्तर हैं, क्योंकि संस्कृत की 'करोमि' 'शृणोमि' आदि क्रियाओं के आधार पर इन प्रत्ययों की उत्पत्ति हुई है। उन क्रियाओं में 'ओ' है और उसके आगे 'मि' है; सो 'मि' के बदले 'ओ' को सानुनासिक कर दिया गया है। प्राकृत हिन्दी की कुछ क्रियायें इस प्रकार हुईं। फिर उनकी देखादेखी दूसरी क्रियाएँ भी वैसी ही बोली जाने लगीं।

(दो०) रहे[३] न[२] दच्छकुमारि[१]

(अर्थ) १ दक्ष की लड़की २ नहीं ३ रहती।

(चौ०) चहिय[२] अमिय[१] जग[३] जुरै[६] न[५] छाछी[४]

(अर्थ) १ अमृत २ चाहिये (परन्तु) ३ जगत में ४ छाछ (मठा) भी ५ नहीं ६ जुरतो।

अवतरण—इन प्रमाणों में 'रहे' और 'जुरै' हमारे लक्ष्य हैं। ये क्रियाएँ वर्तमान काल की हैं। इनमें हम देखते हैं कि धातु से कहीं 'ए' और कहीं 'ऐ' जोड़ा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(२६६) मानस में वर्तमान काल की क्रिया के लिये कभी कभी धातु से 'ए' वा 'ऐ' जोड़ दिया गया है।

(चौ०) सोउ[1] प्रगटत[2] जिमि[3] मोल[5] रतन[4] ते

(अर्थ) १ वह भी २ प्रगट होता है ३ जैसे ४ रत्न से ५ मोल।

(चौ०) सुमिरत[1] सरद[2] आवति[4] धाई[3]

(अर्थ) १ सुमिरने से २ सरस्वती ३ दौड़ी ४ आती है।

(चौ०) सुमिरत[1] दिव्य दृष्टि[3] हिय[2] होती[4]

(अर्थ) १ सुमिरने से २ हृदय में ३ दिव्यदृष्टि ४ होती है।

इन प्रमाणों में प्रगटत, आवति, होती—हमारे लक्ष्य हैं; और ये सब क्रियाद्योतक रूप में हैं, परन्तु अर्थ वर्तमान काल का है। सो नियम होता है कि:—

(२६७) मानस में कभी कभी क्रियाद्योतक रूप ही वर्तमान काल की क्रिया का काम देता है।

(सो०) जलु[1] पय[2] सरिस बिकाय[3]

(अर्थ) १ पानी २ दूधसरीखा ३ बिकता है ।

(सो०) बिलग[1] होइ[2] रस[3] जाय[4]

(अर्थ) १ अलग २ हो जाता है (और) ३ रस ४ चला जाता है।

इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य 'बिकाय' और 'जाय' हैं । ये वर्तमान काल की क्रिया हैं । इनमें हम देखते हैं कि धातु से 'य' जोड़ दिया गया है । सो नियम हुआ कि:—

(२९८) मानस में कभी कभी वर्तमान काल की क्रिया के लिये धातु से 'य' जोड़ दिया जाता है ।

वास्तव में 'य' 'इ' का रूपान्तर है और आकारान्त, एकारान्त और ओकारान्त धातु से ही इसका योग होता है ।

(दो०) जौं[1] चाहसि[3] उजियार[2]

(अर्थ) १ यदि २ उजियाला ३ चाहता है ।

इसमें 'चाहसि' क्रिया जो धातु से 'सि' जोड़ देने से बनी है मध्यम पुरुष एक वचन वर्तमानकाल की है । सो नियम हुआ कि—:

(२९९) मानस में मध्यम पुरुष एक वचन वर्तमान काल की क्रिया के लिये कभी कभी धातु से 'सि' जोड़ देते हैं ।

जैसा हमने और और प्रकरणों में बतलाया है कि कभी मानस में शुद्ध संस्कृत का रूप मिलता है—वैसा ही यहाँ भी जानना चाहिए; अर्थात् संस्कृत की वर्तमानकाल की क्रिया भी मानस में पाई जाती है। वर्तमान ही काल की क्यों, चाहे जैसी क्रियादि कोई पद क्यों न हो, प्रसंग आने पर गोसाईं जी ने उसको वहाँ रख दिया है। जैसे

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे—
हरिं नरा भजन्ति जेऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥

इसमें कुछ ही पद ऐसे हैं जो संस्कृत के विकृत रूप में हैं, नहीं तो सब के सब संस्कृत हैं। इससे यह नियम होता है कि:—

(३००) मानस में संस्कृत के शुद्ध प्रयोग और कभी कभी कुछ विकृत भी आते हैं।

क्रियाद्योतक से निकले हुए शेष सब कालों का समावेश इन्हीं रूपों के अन्तर्गत जानना चाहिये। जैसे—

यहि 'प्रकार भरि माघ नहाहीं' इस चौपाई में 'नहाहीं' क्रिया अपूर्ण भूत काल की है क्योंकि इसका अर्थ है 'नहाते थे' यह रूप 'हीं' के जोड़ने से बना है और 'हीं' प्रत्यय हमने वर्तमान काल के पाठ में बतला ही दिया है। ऐसे ही औरों को भी जानना चाहिए।

कर्म-प्रधान रूप के विषय में हमने बतलाया है कि वह 'इअ' वा 'इय' अथवा 'इअहि' वा 'इयहि' के जोड़ देने से हो जाता है।

जो जो प्रत्यय जिसका कहा है वोह वोह उससे जोड़ देने से उस

उस काल की कर्मप्रधान रूप क्रिया हो जाती है। जैसे—सोभा अस कहुँ सुनियत नाहीं—यहाँ 'सुनियत' कर्म-प्रधान वर्तमान काल की क्रिया है, परन्तु है क्रियाद्योतक के रूप में। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना चाहिये।

(कृदन्त)

मानस में क्रिया का साधारण रूप, जिसे क्रियार्थक संज्ञा भी कहते हैं, प्राय: धातु के पीछे 'न' जोड़ देने से बनता है। यह 'न' वास्तव में संस्कृत का ल्युडन्त प्रयोग है। जैसे—

'करन चहउँ रघुपति गुन गाथा'—इस चौपाई में 'करन' क्रिया का साधारण रूप है। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना चाहिये। कभी कभी धातु से 'नि' जोड़ कर ही क्रिया का साधारण रूप मान लिया गया है। इसके और भी रूप होते हैं जिन्हें हम सातवें अध्याय में बतला आये हैं। परन्तु हमारे कृदन्तीय रूप मानस में इन्हीं दो रूपों से मिलते हैं। इसलिये उनका स्मरण हमने यहाँ फिर दिला दिया है। अब आगे जो कुछ कृदन्तीय रूप मानस में पाये जाते हैं उन्हें लिखते हैं।

(चौ०) अब[१] यह[२] मरनहार[४] भा[५] साँचा[३]

(अर्थ) १ अब २ यह ३ सचमुच ४ मरनहार ५ हुआ है।

(चौ०) जगु[२] पेखन[३] तुम्ह[१] देखनिहारे[४]

(अर्थ) १ तुम २ जगत को ३ पेखने (और) ४ देखने हारे हो।

(चौ०) पिय हिय की सिय जाननिहारी

(अर्थ) १ सीता २ पति के ३ हृदय की ४ जानने हारी थी।

इन प्रमाणों में हमारे लक्ष्य—मरनहार, देखनिहारे, जाननिहारी—हैं। ये सब कर्तृवाचक कृदन्त के रूप हैं जो क्रिया के साधारण रूप के पीछे लिंग-वचनानुसार—हार, हारे, हारी—के जोड़ देने से बने हैं। सो नियम हुआ कि:—

(३०१) मानस में कभी कभी क्रिया के साधारण रूप के पीछे लिंगवचनानुसार—हार, हारे, हारी—को जोड़ कर कर्तृवाचक रूप बना लिया गया है।

(चौ०) मोह-जनित-संशय सब हरना

(अर्थ) १ सब २ मोह से उत्पन्न हुए संदेह को ३ हरनेवाली है।

इसमें 'हरना' हमारा लक्ष्य है। यह भी कृदन्त का कर्तृवाचक रूप है जो क्रिया के साधारण रूप के 'न' को दीर्घ कर देने से बन गया है। सो नियम हुआ कि:—

(३०२) मानस में कभी कभी क्रिया के साधारण रूप के 'न' को दीर्घ करके कृदन्त का कर्तृवाचक रूप बनाया गया है।

(चौ०) सोभा[1] कोटि-मनोज[2] लजावन[3]

(अर्थ) १ शोभा २ करोड़ कामदेव को ३ लजानेहारी है।

(छं०) मंगल करनि[1] कलिमल हरनि[2]

(अर्थ) १ मंगल करने वाली (और) २ कलि के पापों को हरने वाली है।

यहाँ लजावन, करनि, हरनि—ये पद हमारे लक्ष्य हैं। हम देखते हैं कि यहाँ क्रिया का साधारण रूप ही कृदन्त का कर्तृवाचक रूप करके रक्खा गया है। सो नियम हुआ कि:—

(३०३) मानस में कभी कभी क्रिया का साधारण रूप ही कर्तृ-वाचक कृदन्त मान लिया गया है।

(चौ०) विधि-निषेधमय[1] कलिमल-हरनी[2]

(अर्थ) १ विधि और निषेध रूप २ कलि के पापों को हरने-वाली है।

यहाँ 'हरनी' रूप कर्तृवाचक कृदन्त का है, और वह क्रिया के साधारण रूप की 'नि' को दीर्घ कर देने से बन गया है। सो नियम हुआ कि:—

(३०४) मानस में कभी कभी क्रिया के साधारण रूप की 'नि' को दीर्घ करके कृदन्त का कर्तृवाचक रूप बना लिया गया है।

(चौ०) ते[1] यहि[2] ताल[3] चतुर[4] रखवारे[5]

(अर्थ) १ वे २ इस ३ ताल के ४ चतुर ५ रखवाले हैं।

यहाँ 'रखवारे' कर्तृवाचक कृदन्त है, और धातु से लिंगवचनानुसार 'वारा' प्रत्यय के जोड़ देने से बना है। सो नियम हुआ कि:—

(३०५) मानस में कभी कभी धातु से लिंगवचनानुसार 'वारा' प्रत्यय जोड़ कर कर्तृवाचक कृदन्त बनाया गया है।

(चौ०) विनय-विवेक-विरति-विस्तारक[1]

(अर्थ) १ सुशीलता, ज्ञान और वैराग्य की फैलाने वाली है।

यहाँ 'विस्तारक' पद कृदन्त का कर्तृवाचक का रूप है, जो धातु से 'क' जोड़ देने से बन गया है। सो नियम हुआ कि:—

(३०६) मानस में कभी कभी धातु से 'क' प्रत्यय जोड़ कर कर्तृवाचक कृदन्त का रूप बना लिया गया है।

वास्तव में यह संस्कृत रूप होने के कारण तत्सम है, और संस्कृत में 'क' नहीं किन्तु 'अक' प्रत्यय है, परन्तु हिन्दी में 'क' ही कहा जा सकता है।

---

(३०७) संयुक्त क्रिया आदि के विषय में यही कहना है कि मानस में जिस जिसके जो जो रूप कहे गये हैं उन्हीं के साथ मानसोक्त रूपों का संयोग होता है। जैसे—लोकभाषा में 'किया

चाहना' वा 'करना चाहना' रूप होता है, वही मानस में 'कीन्ह चह' वा 'करन चह' होता है । क्योंकि 'कीन्ह' और 'करन' मानस के रूप हैं, उन्हीं के साथ 'चह' धातु का संयोग हुआ है । ऐसे ही अन्यत्र भी जानना चाहिये ।

अब कोई बात ऐसी नहीं रह गई जिसके विषय में और कुछ लिखा जाय, सो हम यहीं पर मानस-प्रबोध को समाप्त करते हैं ॥

शुभमस्तु ।

दोहा

राम कृपाते पाय व्याकरण शास्त्र कौ पंथ,
बालन हित निर्मित करयो, विश्वेश्वर यह ग्रंथ ॥१॥

अट्ठाइस कम बीस सै विक्रम संवत मान,
चैत सुदी नवमी तिथी, सुरगुरु वार बखान ॥२॥

सोइ पुनीत प्रभुजनम दिन, एहि कर आरँभ काल,
राखी पुन्नम भौम दिन, भएउ पूर्ण तेहि साल ॥३॥

प्रभु सों है विनती यही, पूजिय मन अभिलास,
जो पढ़ यहि मन लाइ सो, पावै बुद्धि विकास ॥४॥

इति विश्वेश्वरदत्तविरचिते मानस-प्रबोधव्याकरणे क्रिया-निरूपणो नामाष्टमोऽध्याय ।

ग्रन्थश्च समाप्तः ।

—:o:—